जैन कथा कोष

सम्पादन

आचार्य विभवसागर जी

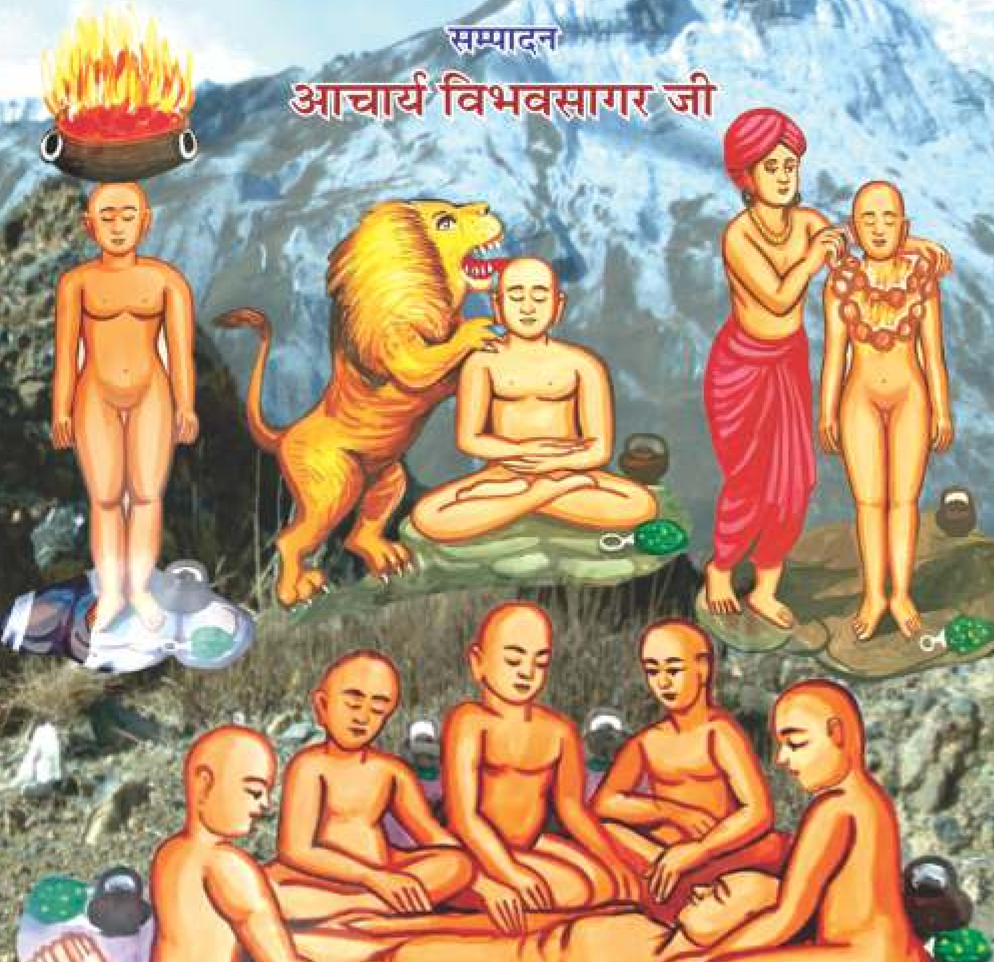

संकलन

क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी

आचार्य परम्परा

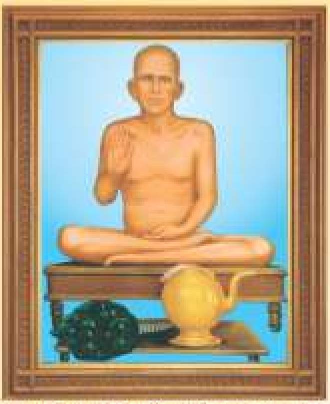

प.पू. 108 आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर)

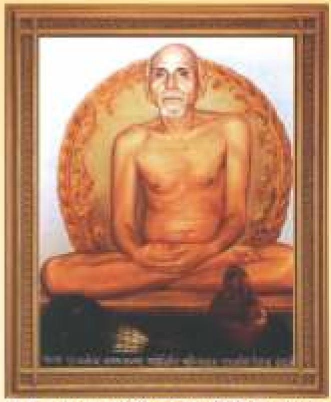

प.पू. 108 आचार्यश्री महावीर कीर्तिजी महाराज

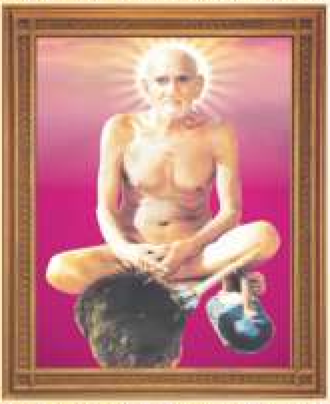

प.पू. 108 आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज

प.पू. 108 आचार्यश्री सन्मतिसागरजी महाराज

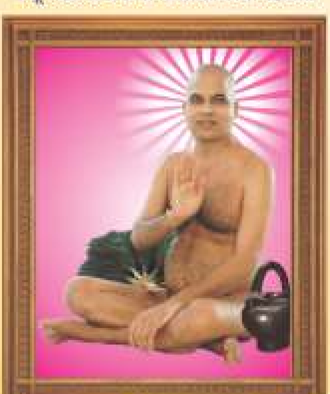

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

प.पू. श्रमणाचार्य श्री 108 विभवसागरजी महाराज

जैन कथा कोश

सम्पादन
आचार्य विभव सागर जी

संकलन
क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी

कृति : जैन कथा कोश

सम्पादन : आचार्य विभवसागरजी

संकलन : क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी

संस्करण : प्रथम, 2019

आवृत्ति : 1100 प्रतियाँ

पुण्यार्जक : गुप्तदान दानवीर परिवार, राजनांदगाँव (छ.ग.)

प्राप्ति स्थान : 1.तेज कुमार-मंजु वेद / प्रतिपाल टोंग्या
8 डी.एक्स/सेक्टर-सी, स्कीम नं. 71
गुमास्ता नगर के पास, इन्दौर (म.प्र.).452001
मो. : 9425154777, 9302106984
2.सौरभ जैन, 126-सी, अजुन नगर साउथ,
गोपालपुरा बाईपास, जयपुर (राजस्थान)
मो. : 9826178749
3.जैन चश्मा घर, श्री सन्मति जैन,
परकोटा, सागर (म.प्र.)
मो. : 9425462997

प्रकाशक : श्रमण श्रुत सेवा संस्थान जयपुर
शाखा - इन्दौर (म.प्र.)
प.क्र. COOP/2019/जयपुर/104083/15/03/2019

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र,
गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)
फोन : 0755-2601952, 9425005624

प्रस्तावना

- आचार्य विभवसागर

मरणकण्डिका ग्रन्थ आराधना ग्रन्थ है। रचयिता अमितगति आचार्य ने संस्कृत भाषा में सुरुचिपूर्ण, सरलतम, सरसतम, सहजतम, मधुरतम, लालित्यमयी, अर्थ गाम्भीर्य युक्त शब्दावलियों का उपयोग कर आराधना विषयक समग्र जानकारियाँ प्रस्तुत कर दी हैं।

समाधिमरण प्रक्रिया इस ग्रन्थ का मूल है। समाधि का अर्थ धर्मध्यान है। धर्मध्यानयुक्त मरण को समाधिमरण कहते हैं। समाधिमरण करने वाला आराधक दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप इन चार आराधना को सम्यक् प्रकार ध्याता है, आराधता है।

आमरण महाव्रत धारक वह वीर यति मृत्यु से भयभीत नहीं होता है। यदि अल्पबुद्धि, अल्पधैर्य, अल्प वैराग्य वाला कोई साधक कर्मोदय, मोहोदय के अधीन हुआ संक्लेश को प्राप्त होता तो निर्यापकाचार्य गुरु उसे तत्काल हित मित प्रिय अथवा हितकारी कटुवचनों से सम्बोधित कर मोक्षमार्ग में स्थिर करते हैं।

संल्लेखना काल में क्षपक को आचार्य उपदेश देने हेतु जिन कथाओं का आधार लेते हैं, जो कथामृतपान कराते हैं वे सत्कथायें हम सभी सज्जनों का भी हित साधेंगी। इस उद्देश्य को लक्ष्य कर हमारी शिष्या क्षुल्लिका सिद्ध श्री माताजी ने मरणकण्डिका शास्त्र का स्वाध्याय कर समाधिमरण कथाकोश तैयार किया है।

निर्वेदनी–

संसार, शरीर, भोगों की अनित्यता, अशुचिता, आस्रव बन्धदशा तथा नरकादि के दुःख रूप फल का वर्णन जीवों को समीचीन तत्त्व

ज्ञान द्वारा उदासीन भाव प्रकट कर दृढ़ वैराग्य जगाकर मेक्षमार्ग में जोड़ने वाली कथा निर्वेदनी कथा है।

प्रत्येक तीर्थंकर के वैराग्य का कोई एक बाह्य कारण अवश्य होता है। बिना कारण के तो तीर्थंकर भी वैराग्य को प्राप्त नहीं होते हैं।

जिन कारणों से तीर्थंकरादि महापुरुष वैराग्य को प्राप्त हुए अथवा जिन महापुरुषों ने परीषह, और उपसर्ग आने पर भी मोक्षमार्ग को नहीं छोड़ा उन महान आत्माओं के प्रेरक प्रसंग, पावन कथानक निर्वेदनी कथा में सम्मिलित होते हैं।

ऐसी संवेगनी, निर्वेदनी कथायें भगवती आराधना एवं मरणकण्डिका शास्त्र में लिखित हैं। हमारी शिष्या सिद्ध श्री माता जी ने ''मरणकण्डिका'' शास्त्र का श्रुतभक्ति पूर्वक स्वाध्याय किया।

स्वाध्याय समय शास्त्र पठित उन धर्मकथाओं का संग्रह भी किया। संप्रति वह संकलन ''धर्मकथा कोष'' प्रकाशित हो रहा है। जिससे भव्यजीवों का भला होगा।

यह शुभोपयोगी संकलन स्वाध्याय की अनुपम उपलब्धि है। मेरा उनके लिए सदैव मंगल आशीर्वाद...। वह अपने संयमी जीवन में निरन्तर स्वाध्याय, साधना को अग्रसर रखते हुए सदा स्वस्थ और प्रसन्न रहते हुए संवर-निर्जरा के लिए ज्ञान-ध्यान कर जिनशासन जयवंत बनायें।

शुभाशीर्वाद.....

आचार्य विभवसागर

दीपोत्सव पर्व,

मुंबई-2018

आशीर्वाद

आ. विभव सागर

परीषहोऽथवा कश्चिद्
उपसर्गो यदा मनः।
क्षपकस्य क्षिपेत् ज्ञान,
सारैः प्रत्याहरेत्सदा ॥
॥ ९४ ॥
आशाधर / सा. ध.

जब कोई क्षुधादि परीषह अथवा कोई अचेतन कृत उपसर्ग क्षपक के चित्त को विक्षिप्त करे उस समय निर्यापकाचार्य श्रुतज्ञान रूप अमृत के द्वारा विक्षिप्त हुए मन को पुनः स्वात्मोन्मुख करे।

" कथ्यते इति कथा "
जो कही जाती है वह कथा है।

धर्मकथा के चार भेद हैं -

(i) संवेदिनी (संवेगिनी) धर्म और धर्म के फल को बताने वाली।
(ii) निर्वेदनी - वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा।
(iii) आक्षेपणी -
(iv) विक्षेपणी -

उपर्युक्त चारों कथायें धर्म की अंग होने से धर्मकथा कहलाती हैं। उनमें से संवेगिनी कथा धर्म और धर्म का फल बताकर जीवों के लिए कल्याण मार्ग में जोड़ती है। धर्म विमुख जीव भी कथाश्रवण कर धर्म में श्रद्धा और आचरण से जुड़कर व्रत-नियम संयम पालते हैं। यथा - मैना सुन्दरी कृत सिद्धचक्र व्रत आराधना।

संवेदनी, निर्वेदनी ये वीतरागकथायें हमारे चित्त को समझाने और सम्हालने में समर्थ हैं। जिन कथाओं के श्रवण और मनन से आत्मा जागृत होती है। धर्म पालन में प्रोत्साहित और सुस्थिर होती है। उन पुण्य, धर्म कथाओं का समग्र कोश यह शास्त्र है।

पाठक गण श्रुतरूपी अमृत के द्वारा मन को प्रसन्न और पवित्र करें। तथा यह कथारूपी अमृत स्वयं पियें तथा अन्य भव्य जीवों को पिलायें।

स्वाध्याय निरत श्रुत, व्रत, तप साधिका क्षुल्लिका माता जी का यह पुण्य प्रयत्न उनके लिए आरोग्य लाभ, बोधि लाभ, तथा समाधि लाभ दे।

शुभाशीर्वाद ...

12-4-2019

मानतुंगगिरि-धार
(म.प्र.)

卐 परम पूज्य बड़े बाबा नमो नमः 卐

समर्पण

वात्सल्य वारिधी! सारस्वत कवि! नय चक्रवर्ती! शास्त्र कवि! सूत्रानूविची प्रवचन प्रवक्ता! श्रमणाचार्य! डॉक्टर! आचार्य विभवसागर जी महाराज के चरणों में नमोस्तु... नमोस्तु... नमोस्तु...

आचार्य भगवन् की असीम कृपा से और उनकी आज्ञा से मरण की कला बताने वाला महान ग्रन्थराज 'मरणकण्डिका' ग्रन्थ का मैंने स्वाध्याय किया। हमारे गुरु ने हमको आज्ञा दी की इस ग्रंथ में जो भी अच्छा लगे उसकी डायरी बनाये, मैनें वैसा ही किया। शाहगढ़ चातुर्मास में बहिन आरती के सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हुआ, उसके पश्चात मैंने समस्त डायरियाँ श्रीमान सन्मति जैन 'जैन चश्मा घर' को सुरक्षा हेतु प्रदान की। चाचा जी ने उन डायरियों का अध्ययन करके कहा- माता जी यह संकलन प्रकाशन के योग्य है, तब राजनांदगांव चातुर्मास में छाबड़ा परिवार की ओर से इस जिनवाणी का प्रकाशन कराने का सौभाग्य प्राप्त किया। आप सभी के लिए गुरुवर का आर्शीवाद...

आप सभी सदा श्रुत की सेवा करते रहें, श्रुत के अध्ययन में लगे रहें। इस 'माँ जिनवाणी' में 'मरणकण्डिका' ग्रन्थ की समस्त कहानियाँ हैं जिसका नाम गुरुवर ने 'जैन कथा कोश' रखा है। यह जिनवाणी हम सभी को साहस-सम्बल-समता को देने वाली है। इसका स्वाध्याय बच्चे-वृद्ध सभी कर सकते हैं। आप स्वयं भी पढ़ें और सब को पढ़ायें...

नमोस्तु गुरूवर... नमोस्तु भगवन्...

1-7-2019

कोरवा (छत्तीसगढ़)

मनोगत

सर्व मंगल-मांगल्य, सर्वकल्याण कारकम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

प्रस्तुत कथा संग्रह 'मरणकण्डिका' ग्रन्थ के स्वाध्याय का प्रतिफल है परम पूज्य आचार्य श्री विभवसागरजी की आज्ञानुवर्ती शिष्या क्षुल्लिका श्री 105 सिद्धश्री माताजी जो धर्मानुरागी, स्वाध्याय प्रेमी, ज्ञान पिपासु, कुशल प्रवचनकार, मधुर कण्ठ की धनी हैं। आचार्य श्री के आदेशानुसार ग्रन्थ का अध्ययन कर धर्म पिपासुओं को छोटी-छोटी कथा के माध्यम से धर्म का सार समझाने का प्रयास किया है। जिसको पढ़कर थोड़े में बहुत ज्ञान एवं धर्म का मर्म समझ में आयेगा। यह कथा-कोष अबाल-बद्ध को रुचिकर लगेगा, ऐसा मेरा मानना है।

पूज्य माताजी ने राजनांदगांव (छ.ग.) प्रवास पर मुझे अवलोकन हेतु लेखन कार्य सौपा अद्यतन पढ़कर मेरा मन रोमांचित हो उठा, लगा कि माताजी ने गागर में सागर समाहित कर दिया है। तद्उपरांत मैंने इसे टाइप कराकर प्रकाशन के लिये तैयार किया। आचार्य भगवन् से इसे प्रकाशन की अनुमति मांगी। गुरुवर ने आशीर्वाद प्रदान किया।

गुरु छांव तले संग्रह अब आपके करकमलों में है। आप इसका अध्ययन कर अपने लिये अनुपालन करें बच्चों को कथा सुनायें एवं पढ़ने को दे। आप खुद अनुभव करेंगे कि हमारे जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। वीर प्रभु से प्रार्थना है कि माता जी दीर्घायु हों इसी तरह जैन धर्म की पताका फहराती रहें।

माताजी के चरणों में त्रयवार इच्छामि।

जैन चश्मा घर — **सन्मति-मीना जैन**
सागर

अनुक्रमणिका

1. प्रस्तावना

2. आशीर्वचन

3. कथा

1.	नागदत्त की मुनि कथा	1
2.	आर्याजन संगति त्याग वर्णन	2
3.	संघश्री मंत्री की कथा	3
4.	सम्यक्त्व भावना में राजा श्रेणिक की कथा	4
5.	जिनेन्द्र भक्ति में पद्मरथ की कथा	5
6.	णमोकार माहात्म्य में सुभग ग्वाले की कथा	6
7.	यम मुनि की कथा	6
8.	दृढ़ सूर्य चोर की कथा	7
9.	राजा वसु की कथा	8
10.	गोरसंदीवनामा भ्रष्ट मुनि की कथा	8
11.	कडारपिंग की कथा	9
12.	रक्ता रानी की कथा	10
13.	गोपवती रानी की कथा	10
14.	वीरवती की कथा	11
15.	सुरत राजा की कथा	11
16.	चारूदत्त की कथा	12
17.	सात्यकि रुद्र की कथा	13

18.	पारासर की कथा	14
19.	शकट नाम के भ्रष्ट मुनि की कथा	14
20.	कूपार नाम के भ्रष्ट मुनि की कथा	15
21.	सगे दो भाइयों की कथा	15
22.	चोरों की कथा	16
23.	धनलोभ में जिनदत्त की कथा	16
24.	पिण्याकगंध की कथा	18
25.	फणहस्त पटहस्त वणिक की कथा	18
26.	वशिष्ठ मुनि की कथा	20
27.	लक्ष्मीमति की कथा	20
28.	संभूत की कथा	21
29.	पुष्पदंता आर्यिका की कथा	22
30.	मरीचि की कथा	22
31.	गंधमित्र की कथा	23
32.	गंधर्वदत्ता की कथा	24
33.	भीम राजा की कथा	24
34.	सुवेग चोर की कथा	25
35.	गोप में आसक्त नागदत्ता की कथा	26
36.	द्वीपायन मुनि की कथा	26
37.	सगरचक्री के साठ हजार पुत्रों की कथा	27
38.	मायावी भरत कुम्हार की कथा	28
39.	कार्त्तवीर्य की कथा	28

40. सुकुमाल मुनि की कथा 29
41. सुकौशल मुनि की कथा 30
42. गजकुमार मुनि की कथा 30
43. सनत्कुमार मुनि की कथा 31
44. पणिक-एणिक पुत्र मुनि की कथा 32
45. धर्मघोष मुनि की कथा 32
46. श्री दत्त मुनि की कथा 33
47. वृषभसेन मुनि की कथा 34
48. कार्तिकेय मुनि की कथा 35
49. अभयघोष मुनि की कथा 36
50. विद्युच्चर मुनि की कथा 37
51. गुरुदत्त मुनि की कथा 38
52. चिलातपुत्र मुनि की कथा 39
53. चंड या दंड नाम के मुनि की कथा 40
54. अभिनंदन आदि पांच सौ मुनिराजों की कथा 41
55. आचार्य वृषभसेन की कथा 42
56. वृषभसेन मुनि की कथा 43
57. यतिवृषभ आचार्य की कथा 43
58. शटकाल मुनि की कथा 44

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

59. अंजन चोर की कथा 45
60. अनन्तमति की कथा 47

61.	उद्दायन राजा की कथा	49
62.	रेबती रानी की कथा	50
63.	जिनेन्द्र भक्त सेठ की कथा	51
64.	वारिषेण की कथा	53
65.	विष्णुकुमार मुनि की कथा	54
66.	वज्रकुमार मुनि की कथा	58
67.	यमपाल की कथा	60
68.	धनदेव की कथा	62
69.	नीली की कथा	63
70.	जयकुमार की कथा	64
71.	धन श्री की कथा	65
72.	सत्यघोष की कथा	66
73.	तापस की कथा	69
74.	यमदण्ड कोतवाल की कथा	72
75.	श्मश्रुनवनीत की कथा	73
76.	श्रीषेण राजा की कथा	73
77.	कौण्डेश की कथा	75
78.	सूकर की कथा	75
79	मेढ़क की कथा	76

नागदत्त की मुनि कथा

नागदत्त नाम के एक राज पुत्र थे, वैराग्य युक्त होकर उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा ली और घोर तपश्चरण करते हुये जिनकल्पी मुनिराज बने एक समय में वे वन में ध्यान के लिये प्रविष्ट हुये उस स्थान पर डाकुओं का अड्डा था, डाकुओं ने समझा कि वह व्यक्ति हमारा भेद पथिकों को बतायेगा ऐसा मानकर वे डाकू उन्हें त्रास देने के लिये उद्यत हुये किंतु मुनिराज के स्वरूप को जानने वाले डाकुओं के सरदार ने त्रास देने से रोक दिया और कहा कि ये सब संसार माया से दूर हैं इन्हें किसी से ममत्व नहीं इत्यादि। मुनिराज कुछ काल तक वहीं ठहर गए। एक दिन उन नागदत्त मुनिराज की माता जो कि नगर के राजा की प्रमुख रानी थी और अपनी कन्या को तथा योग्य वैभव एवं परिकर को लेकर दूसरे देशों में जा रही थी, उसी वन में पहुँची वह मुनिराज के दर्शन कर प्रश्न करती है कि हे साधु ! आप यहाँ वन में निवास करते हो मुझे बताइये कि इस वन में कुछ भय तो नहीं है ? मेरे साथ युवती कन्या अर्थात् आपकी बहिन और वैभव है। एकत्व भावना से वासित है मन जिनका। ऐसे वे श्रेष्ठ यति मौनस्थ रहे उत्तर नहीं दिया ; जब कि वे जानते थे कि यहाँ चोरों का भय है। रानी वन में आगे गमन कर जाती है और बीच में डाकुओं द्वारा पकड़ी जाती है। डाकु समस्त माल तथा रानी और सुंदर नवयौवना राजकन्या को अपने सरदार के निकट ले जाते हैं। सरदार खुश होकर कहता है देखो ! मैंने पहले कहा था ना कि मुनिराज किसी को कुछ नहीं बताते हैं। इस वाक्य को सुनकर रानी अत्यंत कुपित होकर कहती है हे सरदार ! मुझे छुरी दो जिस उदर में मैंने उस पापी मुनि को नव मास रखा उसको चीर डालती हूँ, उसने मेरे उदर को अपवित्र किया है इत्यादि। इस वाक्य को सुनकर सरदार को मालूम होता है कि यह मुनिराज की माता है और यह सुंदर कन्या बहिन है। मुनिराज के इतने विशिष्ट निष्पृह भाव को ज्ञातकर सरदार एकदम विरक्ति को प्राप्त होता है और गद्गद् वाणी से कहता है कि हे माता ! तुम धन्य हो तुम तो जगत्माता हो, तुम्हारी कुक्षि धन्य है वह कदापि अपवित्र नहीं, जिससे ऐसे महान वैरागी आत्मा ने जन्म लिया। इत्यादि वाक्य से रानी को

सांत्वना देकर उसे अपनी माता और कन्या को बहिन सदृश आदर करके संपूर्ण वैभव के साथ उनके इष्ट देश में पहुँचा देता है तथा स्वयं सर्व चौर्य आदि पापों का त्याग करता है। इस प्रकार नागदत्त नामा मुनिराज का यह अत्यंत वैराग्य प्रद कथानक है।

आर्याजन संगति त्याग वर्णन

साधुजनों को आर्यिका की संगति छोड़ देनी चाहिये, यह आर्यिका की संगति विष के समान प्राण नाशक है, अग्नि के समान संतापकारी है। दुर्नीति अर्थात् अन्याय और निंदा से जैसे अपयश होता है वैसे ही आर्यिका की संगति करने से मुनिजनों का अपयश होता है।

आर्यिका मानस परिणाम यतिकी संगति से शीघ्र नष्ट हो जाता है। ठीक ही है देखो ! घृत को अग्नि के समीप रखने पर क्या वह काठित्यपने को नहीं छोड़ता है ? छोड़ता ही है। अर्थात् जमा हुआ कठोर घृत अग्नि के समीप पिघल जाता है वैसे आर्यिका का मानस साधु के समीप पिघल जाता है, विकृत हो जाता है।

साधु स्वयं कितना भी स्थिर क्यों न हो किंतु वह आर्यासंग से धृष्टता को प्राप्त कर शीघ्र ही चंचल हो उठता है जैसे कि अग्नि के संग से लाख शीघ्र विलीन हो जाती है।

साधु के आचरण का नाश करने वाला ऐसा आर्यिका का बंधन (संबंध) अन्य बंधन के समान नहीं है। जो चर्म के साथ एकमेक हो गया है ऐसा वज्र लेप भी उस बंधन की तुलना में कमजोर है। वह बंधन तो टूट सकता है किंतु आर्या बंधन टूटता नहीं।

जो अपने ब्रह्मचर्य को सुरक्षित करना चाहते हैं, उन साधु पुरुषों को बाल, वृद्ध, युवा, आर्यिका, श्राविका, गृहिणी इत्यादि हर प्रकार की स्त्री समुदाय का संसर्ग त्याग देना चाहिये।

1. मिथ्यामत जिसे इष्ट लगता है वह पार्श्वस्थ है।

2. चारित्र में सर्वथा शिथिल अवसन्न या आसन्न है।
3. अयोग्य अशिष्ट कार्य में प्रवृत्त मुनि संसक्त कहलाता है।
4. स्वच्छन्द मनमानी प्रवृत्ति करने वाला मृगचरित और प्रकट ही है कुशील जिसका ऐसा कुशील होता है।

"व्रतभंग संसार भ्रमण का कारण है।" संयमी मुनि भी दुष्टों की संगति में आया हुआ, लोगों से दुष्ट ही माना जाता है जैसे कि दुग्ध पीने वाले ब्राह्मण मद्य के संपर्क से मद्यपायी रूप शंकित किये जाते हैं। अर्थात् यदि ब्राह्मण शराबी के निकट दूध भी पीवे तो इसने शराब पी है इस प्रकार लोग उस पर शंका करने लग जाते हैं, वैसे ही पार्श्वस्थ के साथ रहा संयमी भी पार्श्वस्थ माना जाता है।

संघश्री मंत्री की कथा

आंध्रप्रदेश देश के कनकपुर नगर में सम्यक्त्व गुण से विभूषित राजा धनदत्त राज्य करते थे। उनका सङ्घश्री नामका मंत्री बौद्ध-धर्मावलम्बी था एक दिन राजा और मंत्री दोनों महल की छत पर स्थित थे। वहाँ उन्होंने चारण ऋद्धिधारी युगल मुनिराजों को जाते देखा। राजा ने उसी समय उठकर उन्हें नमस्कार किया और वहीं विराजमान होकर धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की। मुनिगणों ने राजा की विनय स्वीकार कर धर्मोपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर मंत्री ने श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये और बौद्ध गुरुओं के पास जाना छोड़ दिया। किसी एक दिन बौद्ध गुरु ने मंत्री को बुलाया। मंत्री गया, किंतु बिना नमस्कार किये ही बैठ गया। भिक्षु ने इसका कारण पूछा, तब संघश्री ने श्रावक के व्रत आदि लेने की संपूर्ण घटना सुना दी। बौद्धगुरु जैनधर्म के प्रति ईर्ष्या से जल उठा और बोला - मंत्री ! तुम ठगाये गये, भला आप स्वयं विचार करो कि मनुष्य आकाश में कैसे चल सकता है ? ज्ञात होता है कि राजा ने कोई षडयंत्र रचकर तुम्हें जैनधर्म स्वीकार कराया है। भिक्षुक की बात सुनकर अस्थिर बुद्धि पापात्मा मंत्री ने जैन धर्म छोड़ दिया। एक दिन राजा ने अपने दरबार में जैनधर्म की महानता और चारणऋद्धिधारी मुनिराजों के चमत्कार सुनाये और उस घटना को सुनाने का अनुरोध मंत्री

से भी किया। मन्त्री बोला - ''महाराज ! असंभव है, न मैंने अपनी आँखों से देखा है और न इस प्रकार की बात संभव है।'' मन्त्री की असत्य बात सुनकर राजा को विस्मय हुआ किन्तु उसी क्षण मन्त्री के दोनों नेत्र फूट गये और वह दुर्गति का पात्र बना। ''जैसी करनी वैसी भरनी'' के अनुसार ही उसने फल प्राप्त किया।

सम्यक्त्व भावना में राजा श्रेणिक की कथा

भगवान महावीर के समय की बात है, राजग्रही नगरी में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी अनेक रानियाँ थीं, उनमें प्रमुख चेलना थी। वह अत्यंत धर्मात्मा, सम्यक्त्व रत्न से अलंकृत थी। राजा की पहले बौद्ध धर्म में श्रद्धा थी। चेलना का और उसका इस विषय में सदा विवाद चलता था। एक दिन राजा वन विहार में गया वहां पर एक मुनिराज ध्यान में बैठे थे, उन्हें देखकर जैनधर्म के द्वेष से मुनिराज के गले में मरा सर्प डाल दिया। राजा ने बातचीत करते हुये चेलना को यह वृत्तांत सुनाया। चेलना अत्यंत दुःखी हुई उसने कहा - हा ! प्राणनाथ ! आपने यह अत्यंत निंदनीय पापकर्म करके अपने को दुर्गति का पात्र बनाया है। बड़े खेद की बात है कि मेरे रहते हुये ऐसा कुकृत्य करके आप आगामी भव में चिरकाल तक कष्ट भोगेंगे ? इत्यादि विलाप करती हुई चेलना श्रेणिक के साथ वन में आयी मुनिराज का उपसर्ग दूर किया। मुनिराज ने ध्यान को विसर्जित करके, चरणों में प्रणाम करते हुये दोनों राजा रानी को सद्धर्मवृद्धिरस्तु आशीर्वाद दिया। महराज के उत्तम क्षमा भाव को देखकर श्रेणिक की मिथ्या मान्यता चूर-चूर हो गई। उनका हृदय अपने कुकृत्य के कारण पश्चाताप से भर आया। उसने बहुत देर तक मुनिराज से क्षमायाचना की तथा उनसे धर्मोपदेश सुनकर सम्यक्‌दर्शन को प्राप्त किया।

श्रेणिक ने भगवान महावीर के समवशरण में जाकर प्रभु की स्तुति, वंदना, पूजा की तथा उनकी दिव्य वाणी सुनी। जब जब प्रभु का समवशरण राजगृही के विपुलाचल पर आता तब तब राजा दर्शनार्थ जाता। भगवान के निकट श्रेणिक ने साठ हजार प्रश्न किये एवं तत्त्व

सिद्धान्त आदि संबंधी समस्त जिज्ञासायें शांत की। परिणामों की अत्यंत विशुद्धि द्वारा क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया तथा परमार्हंत्य पद का कारण ऐसे तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया। अष्टांग सम्यक्त्व रत्नों से अलंकृत वह श्रेणिक अगामी काल में महापद्म नाम का प्रथम तीर्थंकर होगा।

इस प्रकार सम्यक्त्व के माहात्म्य से श्रेणिक ने अपने अनंत संसार परिभ्रमण का नाशकर मुक्ति को सन्निकट कर लिया है।

जिनेन्द्र भक्ति में पद्मरथ की कथा

मगधदेश के अन्तर्गत मिथिलानगरी में परमोपकारी, दयालु और नीतिज्ञ राजा पद्मरथ राज्य करते थे। वे एक दिन शिकार खेलने गये। वहां उनका घोड़ा दौड़ता हुआ कालगुफा के समीप जा पहुँचा। गुफा में सुधर्म मुनिराज विराजमान थे। मुनिराज के शुभ दर्शनों से महाराज पद्म अति प्रसन्न हुये। घोड़े से उतरकर उन्होंने भक्ति भाव से मुनिराज को नमस्कार किया। महाराज ने राजा को धर्मोपदेश दिया जिससे वे अति प्रसन्न हुये और विनीत शब्दों में बोले - गुरुराज आपके सदृश और कोई मुनिराज इस पृथ्वी पर है या नहीं ? यदि है तो कहाँ पर है ? मुनिराज बोले - राजन् ! इस समय इस देश में साक्षात् 12 वें तीर्थंकर वासुपूज्य स्वामी विद्यमान हैं, उनके सामने मैं तो अति नगण्य हूँ। मुनिराज के वचन सुनकर राजा के मन में भगवान के दर्शन करने की प्रबल इच्छा जागृत हो गई और वह अपने परिजन पुरजनों के साथ भगवान के दर्शनार्थ चल पड़ा। उसी समय धन्वन्तरि चरदेव अपने मित्र विश्वानुलोम चर ज्योतिषी देव की धर्म परीक्षा के द्वारा जैनधर्म की श्रद्धा कराने के लिये वहाँ आया, उसने भगवान के दर्शनार्थ जाते हुये राजा पर घोर उपसर्ग किया, किन्तु भक्तिरस से भरा हुआ राजा मंत्रियों के द्वारा समझाये जाने पर भी नहीं रुक सका तथा ''ॐ नमः वासुपूज्याय'' कहता हुआ बढ़ता ही गया। समवशरण में पहुँचकर राजा ने जन्म जन्मान्तरों के मिथ्याभावों को नाश करने वाले भगवान वासुपूज्य के दर्शन किये, दीक्षा ली और चारो ज्ञानों से युक्त होते हुये गणधर हो गये।

णमोकार माहात्म्य में सुभग ग्वाले की कथा

अङ्गदेशान्तर्गत चम्पापुरी नगरी का राजा धात्रिवाहन था। उसकी रानी का नाम अभयमती था। उसी नगरी में वृषभदास नामका एक सेठ रहता था, जिसकी स्त्री का नाम जिनमती था। इस सेठ के यहाँ सुभग नामका ग्वाला था, जो सेठ की गायें चराया करता था शीतकाल में एक दिन जब वह गायें चराकर घर लौट रहा था तब उसने एक मुनिराज को ध्यानारूढ़ देखा। ''इस भीषण शीत में ये कैसे बचेंगे'' इस विकल्प से वह अधीर हो उठा। वह रात्रि भर आग जलाकर मुनिराज की शीत वेदना दूर करता रहा। प्रातः मुनिराज ने अपना मौन विसर्जित किया और धर्मोपदेश के साथ-साथ उक्त ग्वाल बालक को ''णमो अरिहंताणं'' यह मंत्र भी दिया। वे स्वयं भी यह पद बोलते हुये आकाशमार्ग से चले गये। मन्त्र उच्चारण के साथ ही मुनिराज का आकाश में गमन देखकर ग्वाले को इस मंत्र पर अटल श्रद्धा हो गयी और वह निरन्तर भोजनादि संपूर्ण क्रियाओं के पूर्व महामन्त्र का उच्चारण करने लगा। एक दिन उसकी गायें गंगा पार चली गईं, उन्हें वापस लाने के लिये वह गंगा में कूदा। कूदते ही उसका पेट एक तीक्ष्ण काष्ठ के घुसने से फट गया। उस समय उसने महामन्त्र का उच्चारण करके अपने ही सेठ के पुत्र होने का निदान कर लिया। निदान के फलानुसार वह सेठ के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। बालक का नाम सुदर्शन रखा गया। काल पाकर सेठ सुदर्शन ने राज्यवैभव का भोग किया। अन्त में दीक्षा धारण की और स्त्रियों एवं देवियों के द्वारा घोर उपसर्ग को प्राप्त होते हुये वे मोक्षगामी हुए।

यम मुनि की कथा

उडु देशान्तर्गत धर्म नगर में राजा यम राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम धनवती, पुत्र का नाम गर्दभ और पुत्री का नाम कोणिका था। किसी ज्योतिषी ने कोणिका की जन्मपत्रिका देखकर राजा से कहा कि इस कन्या का जिसके साथ विवाह होगा वह संसार का सम्राट होगा। यह बात सुनकर राजा ने अन्य क्षुद्र राजाओं की दृष्टि से बचाने के लिये कन्या को बड़े यत्न से रखना शुरू कर दिया।

एक समय धर्म नगर में सुधर्माचार्य 500 मुनिराजों के साथ आये और नगर के बाहर उद्यान में ठहर गये। अपनी विद्वत्ता के गर्व से गर्वित राजा यम समस्त परिजन और पुरजनों के साथ मुनियों की निन्दा करता हुआ संघ के दर्शनार्थ जा रहा था, किन्तु गुरु निन्दा एवं ज्ञान मद के कारण मार्ग में ही उसका सम्पूर्ण ज्ञान लोप हो गया और वह महामूर्ख बन गया। इस अनहोनी घटना से राजा अत्यंत दुःखी हुआ और उसने पुत्र गर्दभ को राज्य भार देकर अपने अन्य 500 पुत्रों के साथ दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद भी वे मूर्ख ही रहे अर्थात् पंचनमस्कार का उच्चारण भी वे नहीं कर सकते थे। इस दुःख से दुःखित होकर यम मुनिराज गुरु से आज्ञा लेकर तीर्थ यात्रा को चल दिये। मार्ग में उन्होंने गर्दभ युक्त रथ, गेंद खेलते हुये बालक और मेढ़क एवं सर्प के निमित्त से होने वाली घटनाओं से प्रेरित होकर तीन खण्डश्लोकों की रचना की।

यम मुनिराज, साधु संबंधी प्रतिक्रमण, स्वाध्याय एवं कृति कर्म आदि सभी क्रियाएँ इन तीन खण्ड श्लोकों द्वारा ही किया करते थे, इसी के बल से उन्हें सात ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई थीं।

दृढ़ सूर्य चोर की कथा

दृढ़ सूर्य नामका चोर था। वह अपनी प्रेमिका वेश्या के कहने से राज्य में चोरी करने लग गया। वह उसे लिये हुये राजमहल से निकला। उसे निकलते ही पहरेदारों ने पकड़ लिया। सबेरा होते ही वह राज सभा में पहुँचाया गया। राजा ने उसे शूली की आज्ञा दी। वह शूली पर चढ़ाया गया। इसी समय धनदत्त नाम के एक सेठ दर्शन करने को जिनमंदिर जा रहे थे। दृढ़ सूर्य ने उनके चेहरे और चालढाल से उन्हें दयालु समझकर उनसे कहा - सेठजी, आप बड़े जिनभक्त और दयावान् हैं, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि मैं इस समय प्यासा हूँ, सो आप कहीं से जल लाकर मुझे पिला दें तो आप का बड़ा उपकार हो।

परोपकारी धनदत्त स्वर्ग-मोक्ष का सुख देने वाला पंच नमस्कार मंत्र उसे सिखाकर आप जल लेने चला गया। वह जल लेकर वापिस लौटा, इतने में दृढ़ सूर्य मर गया। पर वह मरा नमस्कार मंत्र का ध्यान

करते हुये। उसे सेठ के कहने पर पूर्ण विश्वास हो गया कि यह विद्या महाफल देने वाली है। नमस्कार मंत्र के प्रभाव से वह सौधर्म स्वर्ग में जाकर देव हुआ। सच है - पंच नमस्कार मंत्र के प्रभाव से मनुष्य को क्या प्राप्त नहीं होता ?

राजा वसु की कथा

स्वतिकावती नगरी में राजा विश्वावसु राज्य करता था उसके पुत्र का नाम वसु था। वसु राजपुत्र एक ब्राह्मण पुत्र नारद ये क्षीरकदंब उपाध्याय के पास पढ़े थे ; उपाध्याय का पुत्र पर्वत भी उन दोनों के साथ पढ़ा, समय पर क्षीरकदंब ने दीक्षा ली, राजा विश्वावसु ने भी दीक्षा ली। अब वसु राजा बन गया। एक दिन पर्वत और नारद में ''अजैर्यष्टव्यं'' इस शास्त्र वाक्य पर विवाद हुआ, पापी पर्वत ने इस वाक्य का अर्थ बकरों से हवन करना अर्थात् पशुयज्ञ करना, ऐसा किया और दयालु नारद ने पुरानों धान्यों से हवन करना ऐसा किया। नारद का अर्थ करना बिल्कुल सत्य था। पर्वत का कहना झूठ था। दोनों विवाद करते हुये राजा वसु के पास पहुँचे। दोनों ने अपनी बात रखी यद्यपि राजा जान रहा था कि नारद का कहना सत्य है, तो भी उसने पर्वत की पक्ष ली क्योंकि वह पर्वत की माता से वचनबद्ध हुआ था कि मैं पर्वत के पक्ष में बोलूँगा। जब राजसिंहासन पर बैठे हुये पर्वत की पक्ष लेकर वसु झूठ बोलता है तो उस महापापरूप असत्य भाषण से उसका सिंहासन पृथ्वी में धस गया और वहाँ पर छूटकर तत्काल मरा और नरक में चला गया। इस तरह असत्य के कारण घोर यातना वसु को भोगनी पड़ी।

गोरसंदीवनामा भ्रष्ट मुनि की कथा

श्रावस्ती नगरी का राजा द्वीपायन था उसका नाम गोरसंदीव या गोचरसंदीव था। एक दिन वह राजा वनक्रीड़ा के लिये जा रहा था मार्ग में एक आम्रवृक्ष मंजरी से भरा हुआ देखकर राजा ने एक मंजरी को कौतुहल वश तोड़ लिया राजा आगे निकल गया। पीछे से आने वाले जन समुदाय ने राजा का अनुकरण किया अर्थात् सभी ने एक-एक करके उस आम्रवृक्ष की मंजरी तोड़ ली पुनः पत्ते तथा डालियाँ भी नष्ट कर दीं।

राजा वनक्रीड़ा करके वापिस लौटा तो वृक्ष को न देखकर पूछा। लोगों से वृक्ष नष्ट होने का वृत्तांत सुना तथा उस वृक्ष को केवल ठूंठसा खड़ा देखकर अकस्मात् राजा को वैराग्य हुआ उसने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। अब वे मुनि होकर विहार करते हुये उज्जयिनी में आहारार्थ पहुँचे। किसी एक घर के आंगन में वे प्रविष्ट हुये वह गृह कामसुंदरी वेश्या का था। वेश्या को देखकर मुनि मोहित हो गये और वहीं रहने लगे। बारह वर्ष व्यतीत हो गये किसी दिन वेश्या के पैर के अंगूठे पर दृष्टि गयी तो देखा कि इसके अंगुष्ठ में कुष्ठ है, उससे पुनः वैराग्य भाव जाग्रत होने से उस द्वीपायन या गोरसंदीव ने पुनः दीक्षा ग्रहण की।

इस प्रकार गोरसंदीव मुनि स्त्री के रूप में देखने में आसक्त होने से अपने चारित्र से भ्रष्ट हो गये थे।

कडारपिंग की कथा

कांपिल्य नगर में राजा नरसिंह था उसका मंत्री सुमति नाम का था। उसके एक कडारपिंग नामका पुत्र हुआ वह अत्यंत कामासक्त था। एक दिन उसने कुबेरदत्त सेठ की सर्वांगसुंदरी प्रियंगसुन्दरी पत्नी को देखा। देखकर वह उस पर आसक्त हुआ। सुमति मंत्री ने पुत्र का हाल जानकर पहले तो कामवासना को मन में धिक्कारा किन्तु पुत्र के मोह में आकर प्रियंगुसुन्दरी को हस्तगत करने के लिये उसके पति कुबेरदत्त को द्वीपांतर में भेजना चाहा किन्तु प्रियंगुसुंदरी बुद्धिमती थी उसने ताड़ लिया कि यह कामी कडारपिंग की करतूत है। उसने पति को समझाया कि द्वीपान्तर जाने का केवल दिखावा करो आगे की बात मैं सम्हाल लूंगी। कडारपिंग कुबेरदत्त को द्वीपान्तर गया समझकर प्रियंगुसुंदरी के पास रात के समय आया। उस सुन्दरी ने पखाने के कमरे को साफ सुथरा कराके उसमें एक बिना निवार के पलंग पर चादर बिछा दिया था, प्रियंगुसुंदरी ने आये हुये कडारपिंग को उस पलंग पर बैठने को कहा। जैसे ही वह पापी बैठने लगा वैसे ही धड़ाम से अत्यंत दुर्गंधमय पाखाने के मैल में जा पड़ा। अब कडारपिंग को बहुत पश्चात्ताप हुआ उसने निकलने के लिये सुन्दरी से बहुत प्रार्थना की किन्तु पाप का फल भोगने के लिये

उसने नहीं निकाला। छह मास व्यतीत होने पर कुबेरदत्त ने द्वीपान्तर से आने का बहाना किया। राजा और मंत्री ने जो किंजल्क पक्षी लाने को कहा था, सेठ ने पखाने से कडारपिंग को निकाल कर उसको पक्षियों के पंख लगाकर मुख काला कर हाथ पैर बाँध पींजड़े में डालकर राजा के समक्ष उपस्थित किया तथा वास्तविक सब वृत्तांत कह सुनाया। राजा को कडारपिंग के ऊपर कोप आया और उसने उस कामी पापी को प्राणदंड दिया, कडारपिंग मरकर नरक गया। इस प्रकार परायी नारी के सेवन का भाव करने से तथा साक्षात् सेवन करने से महाभयानक दुःख उठाना पड़ता है ऐसा जानकर इस पाप से विरक्त होना चाहिये।

रक्ता रानी की कथा

पर पुरुष आसक्त रक्ता नाम की रानी थी उसका संक्षिप्त दुश्चरित्र इस तरह है कि अयोध्या नगरी का देवरति नामका राजा था उसकी रक्ता रानी उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। उसके अत्यधिक प्रेम के कारण राजा राज्य का त्यागकर सदा अंतःपुर में रहने लगा अतः मंत्रियों ने उसे राज्य से च्युत कर दिया। राजा रानी को लेकर अन्यत्र चला गया। वहां किसी पंगु के मधुर गान को सुनकर रक्ता उस पर आसक्त हुई और अपने पति देवरति को किसी बहाने नदी में डालकर खुद उस पंगु पुरुष के साथ रहने लगी। पंगु को एक टोकरी में रखकर अपने मस्तक पर लेकर जगह-जगह भ्रमण करती रही, पंगु मधुर गान गाता, जिससे दोनों की आजीविका होती थी। इधर राजा किसी तरह नदी के प्रवाह से निकल आया और पुण्योदय से मंगलपुरी का शासक राजा बन गया घूमती हुई रक्ता वहां पहुँची। राजा ने पहचान लिया और इस स्त्री चरित्र से विरक्त होकर उसने दीक्षा ग्रहण की इस प्रकार पर पुरुष पर आसक्त हुई नारी की दुष्ट चेष्टाएँ हुआ करती है।

गोपवती रानी की कथा

राजा सिंहबल की रानी गोपवती थी यह अत्यंत दुष्ट स्वभाव वाली थी। एक दिन राजा ने ग्रामकूट नामके शासक की सुभद्रा नामकी पुत्री से विवाह कर लिया। इससे गोपवती क्रोधित हुई, उसने उस सुभद्रा

को मार डाला और उसका कटा हुआ मस्तक राजा को दिखाया, राजा को इससे महान दुःख हुआ, जैसे ही वह उसको दण्डित करने में उद्यत हुआ वैसे उस दुष्टा ने उसको भी भाले द्वारा मार डाला। दुष्ट स्त्री के लिये क्या कोई कुकृत्य शेष रहता है जिसे कि वह न कर सके ? वह तो सब कुछ कर डालती है।

वीरवती की कथा

दत्त नाम के वैश्य की पत्नी का नाम वीरवती था यह एक चोर के प्रेम में फंसी थी। एक दिन चोरी करते हुए रंगे हाथ वह चोर पकड़ा गया। उसे राजा ने शूली पर चढ़ाने की सजा दी। चंडाल ने उसे श्मशान में ले जाकर शूली पर चढ़ा दिया। वीरवति दुःखी हुई। रात के समय अंतिम बार उससे मिलने के लिये श्मशान में पहुँची, ऊँचे स्थान शूली पर चढ़े हुये चोर का आलिंगन करने के लिये उसने अधजली लकड़ियाँ और शव इकट्ठे किये और उस पर चढ़कर उससे मिलने लगी इतनें में लकड़ियाँ सिसकी और वह अकस्मात् नीचे गिर पड़ी उससे उसका ओठ चोर के मुंह में रह गया - दांतों से कट गया। वह दुष्टा दौड़कर छुपके से घर लौटी। वहां शोर मचाया कि पति ने मेरा ओठ काट डाला है। राजा के पास शिकायत गई उसने पति को दण्डित करना चाहा किन्तु इतने में किसी से रहस्य का पता चल गया। तब राजा ने निरपराध पति दत्त को छोड़ दिया और दुराचारिणी वीरवती का मुख काला कर शिर के केशों का मुण्डन करवा के गधे पर बैठाकर उसको अपने देश के बाहर निकाल दिया।

सुरत राजा की कथा

अयोध्या का नरेश सुरत नामका था पांच सौ रानियों की शिरोमणि सती नाम की प्रमुख रानी पर अत्यधिक स्नेह होने से सदा उसके निकट रहता था। राजा के मन में मुनिदान का तो बहुत भाव रहता था उसने सब राजकार्य छोड़ दिये थे किन्तु मुनियों को आहार देने का कार्य करता रहता, अन्य कार्य सब मंत्रियों पर छोड़ा था। एक दिन अपनी प्राण प्रिय के कपोल पर तिलक रचना कर रहा था इतने में

आहारार्थ मुनि का आगमन हुआ। रानी को इससे क्रोध आया उस पापिनी ने बहुत अपशब्द गाली आदि से मुनि की महान निंदा की सब सखी दास-दासियों के समक्ष बहुत कुछ दुष्ट निंद्य वाक्य कहती ही रही इससे मुनि की निंदारूप भयंकर पाप से उसके शरीर में तत्काल गलित कुष्ठ हो गया। दुर्गंध आने लगी। राजा आहार लेकर लौटता है और रानी की दशा देखकर स्तंभित हो जाता है। उसको वैराग्य होता है और सर्व राज्यपाट छोड़कर जिनदीक्षा ग्रहण करता है। रानी कुछ समय बाद मरकर दुर्गति में चली जाती है। इस प्रकार यौवन का जोश, रूप का गर्व करने से रानी की दुर्दशा हुई।

चारूदत्त की कथा

चंपापुरी में भानुदत्त नाम का सेठ रहता था उसकी पत्नी सुभद्रा से चारूदत्त नाम का गुणी पुत्र हुआ, कुमार काल से विद्या का अधिक प्रेमी होने पर भी स्त्री संपर्क से दूर रह कर सदा विद्याभ्यास कला आदि में लगा रहता था किसी दिन माता आदि कुटुंबी के द्वारा किये गये उपाय से वह बसंत सेना वेश्या पर मोहित होकर उसी के यहाँ रहने लगा घर का सब धन बरबाद हुआ परिवार को बहुत पश्चात्ताप हुआ लेकिन अब क्या हो सकता जब चारूदत्त को धन रहित देखा तब बसंत सेना की माता ने कपट से उसे घर से बाहर निकाल दिया चारूदत्त अत्यंत लज्जित एवं दुखी होकर धनोपार्जन के लिये विदेश यात्रा करता है। धन संग्रह कर जहाज द्वारा जैसे ही वापिस लौटता है जहाज तूफान द्वारा डूब जाता है पुनः अनेक कष्टों का सामना करते हुए धन कमाता है किंतु दुर्भाग्यवश फिर जहाज डूबता है ऐसा सात बार होता है। किन्तु आयु के प्रबल होने से सातों बार लकड़ी के सहारे किनारे लगता है इसी बीच में एक ठग सन्यासी द्वारा अंधकूप में गिराया जाता है वहाँ कूप में उसी के समान धोखे से पहुँचे हुए मरणासन्न पुरुष को णमोकार मंत्र सुनाकर समाधि कराता है जिससे वह देव बनता है वहाँ से किसी उपाय से निकल आता है परिवार के रूद्रदत्त नाम के व्यक्ति से भेंट होती है उसके साथ द्वीपांतर जाने का विचार होता है दुष्ट रूद्रदत्त बकरे को मारकर उसकी

खाल को उल्टी कर उसमें बैठकर पक्षी द्वारा रत्नद्वीप में जाने का उपाय बताता है चारूदत्त के मना करते हुए भी उसके सो जाने के बाद रूद्रदत्त बकरे को मारता है चारूदत्त की नींद खुलती है, उसने बकरे को मरते हुए णमोकार मंत्र सुनाया द्वीपांतर में चारूदत्त पहुँचा पापी रूद्रदत्त बीच में मर गया। उक्त द्वीप में चारूदत्त को महामुनि के दर्शन होते हैं वहाँ से विद्याधर की सहायता से वह अपने चंपापुर में सुरक्षित पहुँच जाता है इस प्रकार कुशील की संगति से चारूदत्त ने महान कष्ट भोगे।

सात्यकि रुद्र की कथा

गंधार देश में महेश्वर नगर का राजा सत्यंधर था उसके पुत्र का नाम सात्यकि था इसकी सगाई राजा चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के साथ हो चुकी थी किसी कारणवश ज्येष्ठा राजपुत्री ने आर्यिका दीक्षा ली। जब सात्यकि को यह ज्ञात हुआ तो उसने भी समाधिगुप्त मुनीश्वर के समीप जिनदीक्षा ग्रहण की एक दिन ज्येष्ठा आदि अनेक आर्यिकायें अपनी गणिनी के साथ महावीर भगवान के समवशरण में जा रहीं थीं। मार्ग में पानी बरसने लगा इससे सब आर्यिका संघ तितर वितर हो गया ज्येष्ठा आर्यिका एक गुफा में पहुँची वहाँ साड़ी खोलकर निचोड़ रही थी गुफा में सात्यकि मुनि तपश्चरण कर रहे थे वहाँ अकस्मात् ज्येष्ठा को देखकर उनका मन विचलित हुआ दोनों का समागम हुआ अनंतर वर्षा के समाप्त होने पर आर्यिका संघ एकत्रित हुआ ज्येष्ठ ने अपनी गणिनी यशस्वती आर्यिका से घटित घटना बतायी गणिनी ने अपवाद न हो इस उद्‌देश्य से ज्येष्ठा को उसकी बड़ी बहिन राजा श्रेणिक की पट्‌टदेवी चेलना के पास रखा नव मास व्यतीत होने पर बालक हुआ उस के पालन का भार चेलना ने लिया ज्येष्ठा पुनः छेदोपस्थापना प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होकर तप में लीन हुयी सात्यकि ने भी अपने गुरु के निकट तत्काल पुनर्दीक्षा ग्रहण की इस प्रकार स्त्री के निकट होने से सात्यकि मुनि भ्रष्ट हुए।

इधर उनका पुत्र चेलना के पास वृद्धिंगत हुआ उसका नाम रुद्र था यह क्रूर स्वभाव वाला होने से अपने समीपवर्ती बालकों को पीटता रहता इससे उलाहना आने पर चेलना ने कुपित होकर कह दिया कि

किसका पुत्र और किसको कष्ट दे रहा है इतना सुनकर रुद्र ने राजा श्रेणिक से अपने जन्म का वृत्तांत विदित किया और उसने उदास हो दीक्षा ली वह ग्यारह अंग और दश पूर्व क्रम से पढ़ रहा था दसवें विद्यानुवाद पूर्व के अध्ययन पूर्ण होने पर रोहिणी आदि विद्यायें उसके समक्ष उपस्थित हुई रुद्रमुनि ने लोभवश विद्यायें स्वीकार कर ली अब वह स्वच्छंद भ्रमण करने लगा एक दिन वन में सरोवर पर अनेक राजकन्यायें स्नानार्थ आयीं थीं उन्हें देखकर रुद्र कामबाण से विद्ध हुआ और विद्या के बल से सबको हरण कर अपना बना लिया कन्याओं के पिता ने उससे युद्ध किया किन्तु रुद्र के पास विद्या का बल होने से राजा हार गये और इस तरह रुद्र मुनि भ्रष्ट होकर उन स्त्रियों के साथ रमने लगा अंत में मरकर नरक गया इस प्रकार स्त्री संसर्ग से रुद्र की दुर्गति हुयी।

पारासर की कथा

पाराशर नाम का एक जटाधारी तापसी था उसने कुतप द्वारा कुछ विद्या सिद्ध की थी। एक दिन नौका द्वारा नदी पार कर रहा था नौका को एक धीवर की सत्यवती नामकी लड़की चला रही थी जो सुंदर थी, उस पर पाराशर मोहित हो गया। धीवर से उसको मांगकर जंगल में उसके साथ रहने लगा इस तरह वह तपस्वी लड़की को देख कर कामुक हो, अपने तप से भ्रष्ट हो गया अतः स्त्री से सदा दूर रहना ही साधु व्रती को श्रेयस्कर है।

शकट नाम के भ्रष्ट मुनि की कथा

एक शकट नाम के मुनि आहार के लिए वन से कौशांबी नगरी के निकट आ रहे थे, मार्ग कुछ लंबा था नगर के बाहर एक कुटी में शून्य स्थान समझकर वे बैठ गये वहां कुटिया में एक दास कर्म करने वाली स्त्री रहती थी मुनि ने उसे पहचान लिया कि पहले बालक अवस्था में यह और मैं एक साथ पढ़ते थे मुनि अपने आहार के प्रयोजन को भूल गये और उस जैनिका जयनी नाम की स्त्री से वार्तालाप करने लगे इसमें दोनों के मन परस्पर में आकृष्ट हो गए और शकट मुनि ने अपना निर्मल चारित्र

उस स्त्री के किंचित् काल की संगति से ही छोड़ दिया और उसके साथ वह भ्रष्टाचारी रहने लगा।

कूपार नाम के भ्रष्ट मुनि की कथा

पाटलीपुत्र नगर में अशोक नाम का राजा था उसका एक अत्यन्त पराक्रमी पुत्र कूपार (कूपकार) नाम का था। किसी दिन विहार करते हुए धर्म आचार्य संघ सहित नगर के बाह्य उद्यान में आकर ठहर गये नागरिक समूह दर्शनार्थ जा रहा था कूपार राजकुमार भी उनके साथ गया, आचार्य से वैराग्यप्रद धर्मोपदेश को सुनकर कुमार को संसार से विरक्ति हुयी और उसने जिनदीक्षा ग्रहण की। किसी दिन एक विषम पर्वत पर वह कूपार मुनि ध्यानारूढ़ हुए इधर उनके पिता अशोक राजा को पुत्र वियोग का अत्यंत दुःख हुआ, उस राजा के यहां एक गणिका वीरवती नामकी नृत्यकारिणी थी उसने राजा को कहा मैं आपके पुत्र को वापस ला सकती हूँ आप चिंता शोक न करें इतना कहकर उसने आर्यिका वेष लिया साथ में बहुत सी दासियों को भी आर्यिका का वेष दिलाकर वे सभी जिस पर्वत पर ध्यानारूढ़ कूपार मुनि थे वहाँ आयी। वीरवती तो पर्वत के नीचे ठहर गयी और अन्य स्त्रियां ऊपर जाकर मुनि से कहती हैं कि भो योगीश्वर ! हम सब आर्यिकायें तो यहाँ दर्शनार्थ आ चुकी किन्तु एक आर्यिका पर्वत पर चढ़ने में असमर्थ है आप कृपा करके उन्हें दर्शन देवें। मुनि धर्म वात्सल्य से नीचे आये, उनके आते ही गणिका ने उन्हें हावभाव विलास द्वारा अपने वश में कर लिया। इस तरह वह कूपार यति उस गणिका वीरवती के निमित्त से भ्रष्ट हो गये।

सगे दो भाइयों की कथा

दशार्ण देश में एक रथ नाम का नगर था उसमें दो सगे भाई रहते थे दुर्भाग्यवश उनके दरिद्रता आयी दोनों अपने मामा के समीप गये उन्होंने आठ रत्न दिये और कहा कि इनसे आप अपनी आजीविका का साधन बनाओ। दोनों सगे भाई धनदेव और धनमित्र अपने नगर की ओर आ रहे थे, मार्ग में रत्नों को अकेले ही हड़पने की दुर्भावना से एक दूसरे को मार डालने का विचार आया किन्तु कुछ दूर जाने पर सुबुद्धि आयी

और बुरे विचार एक दूसरे को बताकर उन्होंने रत्नों को नदी में फेंक दिया। उन रत्नों को बड़ी मछली ने निगल लिया धीवर ने जब उस मछली को चीरा तो उसके पेट से वे रत्न निकले किन्तु धीवर उनकी कीमत नहीं जानता अतः बाजार में बेचने आया, कर्म संयोग वश उन धनदेव धनपुत्र की माता ने उनको खरीदा, जब उसे ये रत्न है ऐसा मालूम हुआ तो उसके लोभ में पुत्रों को मारना चाहा, फिर पश्चात्ताप कर उसने उस रत्नों को अपनी लड़की धनमित्रा को दिया, रत्नों को पाते ही उसके भी भाव सबको मारने के हुये फिर सम्हाल कर माता को मन का बुरा भाव बताया सबने बैठकर विचार किया कि अहो। यह रत्न आदि धन परिग्रह अत्यंत दुखप्रद है, यह संसार असार है, धिक् मोह माया को, ऐसा विचार कर वे सभी दीक्षित हो गये इस प्रकार परिग्रह के ममत्व से भाईयों की बुद्धि भ्रष्ट हुई थी।

चोरों की कथा

धनदत्त, धनमित्र आदि बहुत से, सेठ के पुत्र व्यापार के लिये बहुत सा धन लेकर एक वन से जा रहे थे। मार्ग में चोरों ने उन्हें लूट लिया विशाल धन को प्राप्त कर उन चोरों की नियत बिगड़ गयी सबके मन में भाव आया कि अकेले के हाथ सब धन आ जाय रात्रि में भोजन करने बैठे, उन्ही में से एक ने खाने के लिए लाये गये निंद्य माँस में विष मिला दिया सबने उसे खा लिया यहाँ तक कि जिसने विष मिलाया था उसने भी भ्रमवश खा लिया एक सागरदत्त नाम के वैश्यपुत्र ने नहीं खाया था वह बच गया उसने धन लोभ के दुष्परिणाम को साक्षात देखा था इससे उसको वैराग्य हुआा सब धन वहीं पड़ा रहा, एक बचा हुआ सागर दत्त मुनि के निकट दीक्षित हो गया इस प्रकार एक धन लिप्सा सर्व चोरों के मृत्यु का कारण बनी ऐसा जानकर धन की लालसा का त्याग करना चाहिये।

धनलोभ में जिनदत्त की कथा

उज्जैन नगरी में एक जिनदत्त नाम का सेठ था उसके पुत्र का नाम कुबेरदत्त था एक दिन नगर में श्मशान में मणिमाली यति मृतक

शय्या से ध्यान कर रहे थे एक कापालिक विद्या सिद्धि के लिये वहाँ आया और मुनिराज को मृतक समझ कर उनके मस्तक का तथा अन्य दो शवों के मस्तकों का चूल्हा बनाकर उसने आग जलायी उस चूल्हे पर हांडी चढ़ाकर चावल पकाने लगा मुनिराज आत्मध्यान में लीन हुए वे आत्मा और शरीर के पृथक् पृथकने का विचार करने लगे किन्तु उनका मस्तक अकस्मात् हिल गया उससे हांडी गिर पड़ी चूल्हा बुझ गया और कापालिक डरकर भाग गया प्रातः हुआ किसी ने मुनि को कष्टमय स्थिति में देखा और जिनदत्त सेठ को वह समाचार दिया सेठ अतिशीघ्र वहाँ पहुँचा मुनि की स्थिति को देखकर उसको बहुत दुख हुआ तत्काल मुनिराज को अपने गृह चैत्यालय में ले गया चतुर वैद्य की सलाह से लाक्षामूल तेल द्वारा मुनिराज का जला हुआ मस्तक ठीक हो गया जिनदत्त ने गुरु की महान वैयावृत्य की चार्तुमास का समय अत्यंत निकट था अतः सेठ की प्रार्थना पर मुनि ने गृह चैत्यालय में वर्षायोग स्थापित किया किसी दिन अपने व्यसनी पुत्र कुबेरदत्त से धन की रक्षा हेतु सेठ ने मुनिराज के बैठने के स्थान में धन को गाड़ दिया इस बात को कुबेरदत्त ने छिपकर देखा था अतः मौका पाकर उसने धन को उक्त स्थान से निकाल कर अन्यत्र गाड़ दिया। वर्षायोग पूर्ण होने पर मुनिराज विहार करते हैं सेठ ने उनके जाते ही धन को खोदकर देखा तो मिला नहीं अब उसको भ्रम हुआ कि मुनि ने इस धन को चुराया है वह मुनिराज के निकट जंगल में पहुँच जाता है और कथाओं के माध्यम से धन हरण की बात कहता है मुनिराज भी समझ जाते हैं और वे भी कथाओं द्वारा अपनी निर्दोषता कहते हैं उन कथाओं के नाम दूत, ब्राह्मण, व्याघ्र, बैल, हाथी, राजपुत्र, पथिक, राजा, सुनार, वानर, नेवला, वैद्य, तपस्वी, चूतवन लोक और सर्प इन कथाओं को सेठ पुत्र कुबेरदत्त सुन रहा था। पिता को मुनिराज के प्रति होने वाले दुर्भाव को जानकर उसको वैराग्य हुआ। उसने पिता को सब सत्य वृत्तांत कह दिया कि मैंने धन को खोद के निकाला है उसने धन लिप्सा की बड़ी भारी निंदा की जिनदत्त को भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ दोनों पुत्र ने मुनिराज से क्षमा मांगी और उन्हीं के निकट जिनदीक्षा ग्रहण की।

पिण्याकगंध की कथा

कांपिल्य नगर में रत्नप्रभ राजा राज्य करता था उसी नगर में एक पिण्याक गंध नाम का सेठ था वह करोड़पति होकर भी अत्यंत लोभी कृपण और मूर्ख था। न स्वयं धन का भोग करता था, न किसी परिवार जनों को करने देता सब कुछ होते हुए भी खल खाया करता इसलिये उसका नाम पिण्याकगंध पड़ा था पिण्याक खली को कहते है यह सेठ उस पिण्याक को सूंघकर गंध लेकर खाया करता अतः पिण्याकगंध नाम से पुकारा जाता था एक दिन राजा ने तालाब का निर्माण कराया उसकी खुदाई में एक नौकर को लोहे की संदूक में बहुत सी सलाइयां मिली नौकर ने एक एक करके पिण्याक के यहाँ उन सलाइयों को बेचा पहले सलाई लेते समय तो उस सेठ को मालूम नहीं पड़ा कि यह सलाई किस धातु की है। लोहे की समझकर खरीदी पीछे ज्ञात हुआ किन्तु लोभवश लोहे के मूल्य में खरीदता रहा। किसी दिन जब नौकर सलाई बेचने आया तो सेठ के पुत्र ने सलाई खरीदने को मना कर दिया। नौकर दूसरी जगह बेचने को गया, इतने में सिपाही ने उसे पकड़ लिया और राजा के समक्ष उपस्थित किया। नौकर ने जब बात बता दी कि पिण्याकगंध को सलाई बेची जाती थी और लोहे के भाव में बेची थी। राजा को क्रोध आया उसने सेठ का सारा धन छीन लिया। जब पिण्याकगंध को अपने धन का नाश होना मालूम हुआ तो अत्यंत रौद्रभाव से उसने कुपित होकर अपने पैर काट डाले कि इन पैरों से मैं यदि दूसरे ग्राम नहीं जाता तो मेरा धन नहीं लुटता। इस तरह पैर के कट जाने से तीव्र वेदना के साथ वह मर गया और छठे नरक के लल्लक नाम के तीसरे इन्द्रक बिल में उत्पन्न हुआ वहां पर भयंकर वेदना सहता रहा। इस प्रकार परिग्रह का मोह महान परिताप का कारण है, ऐसा जानकर भव्यों को उसका त्याग करना चाहिए।

फणहस्त पटहस्त वणिक की कथा

चंपापुरी में राजा अभयवाहन अपनी पुंडरीका रानी के साथ सुखपूर्वक राज्य करता था उस नगरी में एक महाकंजूस लुब्धक नाम का

सेठ था सेठानी नाग वसु थी वर्षाऋतु का समय था रात्रि के समय नदी में बहकर आयी हुयी लकड़ियों को लुब्धक इकट्ठी कर रहा था रानी पुंडरीका ने इस दृश्य को देखा और लुब्धक को दरिद्री समझ कर राजा से धन देने को कहा राजा ने पता लगाकर सेठ को बुलाया और कहा कि तुम्हें जो द्रव्य चाहिये सो खजाने से ले जाओ। सेठ ने कहा मुझे एक बैल चाहिए राजा ने कहा गौशाला में से जैसा चाहिए वैसा बैल ले जाओ सेठ ने उत्तर दिया राजन् मैं जैसा चाहता हूँ वैसा बैल आपके गौशाला में नहीं है तब आश्चर्ययुक्त होकर राजा ने पूछा कि तुम्हें कैसा बैल चाहिए सेठ ने कहा मेरे पास एक बैल तो है किन्तु उसका जोड़ा नहीं होने से चिंतित हूँ। राजा विस्मित हो उसका बैल देखने को चला, राजा को घर पर आये देख सेठ सेठानी ने उनका स्वागत किया। सेठ ने तलघर में स्थित, मयूर, हंस, सारस, मैना, अश्व, हाथी आदि पशु पक्षियों की रत्न सुवर्णनिर्मित युगलों को दिखाकर सेठ ने कहा कि इनमें एक बैल कम है उसके लिए मैं परेशान हूँ राजा उसका वैभव देखकर दंग रह गया तथा इतने धन के होते हुए भी लकड़ियां इकट्ठी करने जैसे निंद्य कार्य में प्रवृत्त देखकर उसके चाह की दाह पर बड़ा खेद भी हुआ।

राजा जब वापिस जाने लगा तब सेठानी नाग वसु ने सेठ के हाथ में रत्नों का भरा सुवर्णथाल राजा को भेंट में देने के लिए दिया सेठ का सारा रक्त मानो सूख ही गया इतने रत्नों के देते समय उसके दोनों हाथ लोभ और क्रोध के मारे कांपने लगे, राजा के तरफ थाल करते वक्त उसके हाथ नाग फणके सदृश राजा को दिखायी पड़े। राजा समझ चुका था कि यह सेठ महालोभी, कृपण, नीच एवं निंद्य है उसके भावों के अनुसार उसके हाथों का परिवर्तन देखकर राजा ने उसकी निंद्य भावना एवं परिग्रह लोभ की बहुत निंदा की और यह फणहस्त है ऐसा उसका नामकरण करके राजा अपने महल में लौट आया। इधर सेठ धन कमाने हेतु विदेश गया था वहां से लौटते समय समुद्र के मध्य उपार्जित धन के साथ डूब गया और परिग्रह के महालोभ के कारण मरकर नरक में चला गया।

वशिष्ठ मुनि की कथा

वशिष्ठ नाम का जटाधारी तपस्वी था उसे एक बार समीचीन जैन धर्म का उपदेश मिला और कालादि लब्धिका प्राप्त होकर वह जैन दिगंबर मुनि बन गया अब उन्होंने कठोर तपश्चरण करना प्रारम्भ किया किसी दिन मथुरा नगरी के निकट वन में आकर मासोपवास एवं प्रतिमा योग धारण किया। मथुरा के राजा उग्रसेन को मुनि की तपस्या ज्ञात हुयी तब वह बड़ी भक्ति से उनके दर्शन करने के लिए वन में गया। राजा ने नगर में कहलाया कि वशिष्ठ मुनि के मासोपवास का पारणा मेरे यहाँ ही होगा। पारणा का दिन आया महाराजा नगर में प्रविष्ट हुए अन्यत्र पड़गाहन नहीं होने से वे राजमहल में आये किन्तु उस दिन राजा किसी राज्य संबंधी महत्वपूर्ण कार्य में उलझा हुआ था अतः आहार की बात को भूल गया मुनिराज बिना आहार किये वन में चले गये और पुनः एक मास का उपवास धारण किया। पुनः आहार के लिए आये किन्तु राजा उन्हें आहार नहीं दे पाया ऐसा तीन बार हुआ अब की मुनि अत्यंत क्षीण शक्ति हो चुके थे मार्ग में लौटते हुए चक्कर आने से गिर पड़े तब नागरिक लोग दुखी होकर कहने लगे कि अहो। यह हमारा राजा बड़ा निर्दयी हो गया है देखो हमको आहार नहीं देने देता और आप भी नहीं देता इत्यादि। इस वार्ता को वशिष्ठ मुनि ने सुना उनको राजा पर अत्यधिक क्रोध में आकर निदान कर डाला कि मैं इसी उग्रसेन का पुत्र होऊँ इसी भाव में उसकी मृत्यु हुयी। राजा के यहाँ जन्म हुआ बालक का नाम कंस रखा इसने आगे जाकर उग्रसेन को बहुत यातना दी इस प्रकार अप्रशस्त निदान से वशिष्ठ मुनि की तपस्या दूषित हुयी।

लक्ष्मीमति की कथा

लक्ष्मी नाम के ग्राम में सोम शर्मा ब्राह्मण के लक्ष्मीमति नाम की अत्यंत रूपवती पत्नी थी उसको अपने रूप का भरी गर्व था वह सदा ही अपने रूप को संवारने में लगी रहती एक दिन पक्षोपवासी समाधिगुप्त नाम के मुनिराज आहार के लिये आये आंगन में आते हुए देखकर लक्ष्मीमति ने उनकी बहुत निंदा की गालियां दी और घर का दरवाजा बंद

कर दिया उसे उस समय अपना श्रृंगार करना था उससे मुनि को आहार देने से व्यवधान पड़ता इस कारण से तथा मुनि के स्नान रहित शरीर से ग्लानि होने से लक्ष्मीमति ने अपने रूप के गर्व में आकर मुनि निन्दा का महान पाप कर डाला। मुनि शांत भाव से अन्यत्र चले गये किन्तु मुनि निंदा के भाव से लक्ष्मीमति को सातवें दिन गलित कुष्ठ रोग हो गया उसे लोगों ने दुर्गंधता के कारण गांव से बाहर निकाल दिया, वहां वेदना सहन नहीं होने से आग में जल कर मरी और गधी हुयी पुनः क्रमशः सुअरी, दो बार कुत्ती हुयी, फिर धीवर की दुर्गंधा पुत्री हुयी। इस पर्याय में उन्हीं समाधि गुप्त मुनिराज द्वारा धर्म श्रवणकर शांत भाव को प्राप्त हुयी इस प्रकार मान कषाय के दोष लक्ष्मीमती को अनेक भवों में महान कष्ट सहना पड़ा नीचगोत्री तिर्यंचनी पर्याय को बार बार प्राप्त करना पड़ा।

संभूत की कथा

वाराणसी नगरी में दो भाई रहते थे बड़े भाई का नाम चित्त और छोटे का नाम संभूत था। ये दोनों नृत्यकला में अति निपुण हुए स्त्री का वेश लेकर जब वे नृत्य करते तब तक जनता अत्यंत मुग्ध होती कोई भी नहीं पहचानता कि ये दोनों पुरुष हैं। नृत्यकला ही इन दोनों की आजीविका थी।

किसी दिन दिगंबर जैन मुनि गुरुदत्त के मुख कमल से श्रेष्ठ जैन धर्म का उपदेश सुनकर दोनों भाइयों को वैराग्य हुआ और उन्होंने उन्हीं गुरुदेव के निकट दैगंबरी दीक्षा ग्रहण की। गुरु चरण के समीप समस्त आगम का अभ्यास किया अब दोनों मुनि सर्वत्र देशों में विहार करते हुए तपस्या करने लगे उनकी उग्र तपस्या से प्रसन्न हुआ कोई देव चक्रवर्ती का रूप धारण करके मुनियुगल की सेवा करने लगा। चक्रवर्ती का वैभव देखकर संभूत नाम के छोटे मुनि ने निदान किया कि मैं अपनी इस श्रेष्ठ तपस्या द्वारा आगामी भव में चक्रवर्ती बनूँ। यथासमय मरण कर संभूत मुनि प्रथम सौधर्म स्वर्ग में देव बना और वहाँ से च्युत हो कर भरत क्षेत्र का इस अवसर्पिणीकाल का अंतिम बारहवां चक्री ब्रह्मदत्त नाम का हुआ। निदान द्वारा प्राप्त वैभव में अत्यंत आसक्ति होने के कारण ब्रह्मदत्त आयु

के अंत में मरकर नरक में चला गया।

इस प्रकार संभूत मुनि ने निदान द्वारा अपनी सारभूत तपस्या को नष्ट किया और अंत में कुगति में चला गया अतः कभी भी भोगादिक का अप्रशस्त निदान नहीं करना चाहिए।

पुष्पदंता आर्यिका की कथा

अजितवर्त नगर के राजा पुष्पचूल की पट्टरानी का नाम पुष्पदंता था। किसी दिन संसार से विरक्त हो राजा ने दैगंबरी दीक्षा ग्रहण की देखादेखी पुष्पदंता ने भी ब्रह्मिला आर्यिका प्रमुख के निकट आर्यिका दीक्षा ली किन्तु इसे अपने रूप, सौभाग्य, पट्टरानी पद का बहुत अभिमान था जिससे वह किसी अन्य आर्यिका का विनय नहीं करती थी न किसी को नमस्कार करती थी सदा अपनी उच्चता का प्रदर्शन करती रहती अपने शरीर में सुगंधित तैलादि का संस्कार करती। एक दिन गणनी ब्रह्मिला आर्यिका ने उसे बहुत समझाया कि देखो आर्यिका पद में ऐसा शरीर संस्कार वर्जित है तथा तुम्हें गुरुजनों का, आर्यिकाओं का विनय करना चाहिए इत्यादि, किन्तु पुष्पदंता ने मायाचार से असत्य वचन कहा कि मेरे शरीर में निर्सगतः सुगंधी आती है मैं कुछ नहीं लगाती इत्यादि इस मायाचार के साथ उसकी मृत्यु हुयी अर्थात् उसने अंत तक माया शल्य को नहीं छोड़ा फलस्वरूप वह चंपापुरी के सेठ सागरदत्त के यहां दासी होकर जन्मी, जन्म से उसका शरीर दुर्गंधमय था अतः उसका नाम पूर्तिगंधा रखा गया इस प्रकार मायाचार के कारण पुष्पदंता को नीच कुल में नीच कार्य करना पड़ा दुर्गन्धमय शरीर का कष्ट भोगना पड़ा अतः माया शल्य का त्याग करना चाहिए।

मरीचि की कथा

आदिनाथ तीर्थंकर के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती के हजारों पुत्रों में एक मारीचि कुमार नाम का पुत्र था आदिनाथ भगवान जब विरक्त होकर दीक्षित हुए तब उनके साथ यह मारीचि भी दीक्षित हुआ था किन्तु क्षुधा आदि से पीड़ित होकर अन्य राजाओं के समान यह भी भ्रष्ट हो

गया वृक्ष की छाल पहनकर जटाधारी तापसी बन गया आत्मा सर्वथा शुद्ध है, भोक्तामात्र है, कर्ता नहीं, कर्ता तो प्रकृति है इत्यादि सांख्याभि-प्रायानुसार मिथ्यात्व का चिरकाल तक प्रचार करता। रहा वृषभदेव को केवल ज्ञान प्राप्त होने के अनंतर उन भ्रष्ट राजाओं ने समवशरण में दिव्यध्वनि को सुनकर जिनदीक्षा ग्रहण की किन्तु मारीचि ने तीव्र मिथ्यात्व के कारण जिनदीक्षा ग्रहण नहीं की। आयु के अंत में मरकर वह स्वर्ग में देव हुआ पुनः मनुष्य लोक में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर पूर्वभव के संस्कार वश उसी मिथ्यामत में परिव्राजक साधु बन गया, पुनः स्वर्ग गया इसके अनंतर यत्र तत्र चारों गतियों में चौरासी लाख योनियों त्रस स्थावर पर्यायों में चिरकाल तक इक्कीस हजार वर्ष कम एक कोटा कोटी सागर प्रमाण काल तक भटकता रहा पुनः सिंह की पर्याय में चारणऋद्धिधारी मुनियुगल से धर्मोपदेश सुनकर सम्यकत्व को ग्रहण किया और महादुखदायी मिथ्यात्व का त्याग किया आगामी कुछ भवों के अनंतर अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर बनकर सिद्ध पद पाया इस प्रकार मारीचि ने मिथ्यात्व शल्य के कारण घोर कष्ट सहा।

गंधमित्र की कथा

अयोध्या के नरेश विजय सेन के दो पुत्र थे जयसेन और गंधमित्र एक दिन राजा ने बड़े पुत्र जयसेन को राजा एवं छोटे पुत्र को युवराज का पद दिया और स्वयं मुनि दीक्षा लेकर वन में चले गये गंधमित्र को युवराज पद अच्छा नहीं लगा उस अन्यायी ने अनेक कूटनीति द्वारा जयसेन को राज्य से च्युत कर दिया इससे जयसेन भी कुपित हुआ और गंधमित्र को मारने का विचार करने लगा। गंधमित्र विविध प्रकार के फूलों को सूंघने में सदा आसक्त रहता था एक दिन रानियों के साथ वह सरयू नदी में जलक्रीड़ा कर रहा था जयसेन ने मौका पाकर नदी के प्रवाह में ऊपर की ओर से भयंकर विष जिनमें छिड़का गया है ऐसे फूलों को छोड़ दिया गंधमित्र ने उन फूलों को सूंघा, उससे वह तत्काल प्राण रहित हुआ और घ्राणेन्द्रिय के विषय सुगंधि की आसक्ति के कारण नरक में उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार एक घ्राणेन्द्रिय के विषय के दोष से राजा महादुख को प्राप्त हुआ था।

गंधर्वदत्ता की कथा

पाटलीपुत्र के नरेश की गंधर्वदत्ता नाम की अनिंद्य सुंदरी राजकन्या थी वह गान विद्या में महानिपुण थी उसने प्रतिज्ञा की कि जो मुझे गायन कला में जीतेगा उसे मैं वरूँगी। बहुत से राजकुमार उसकी सुंदरता से आकृष्ट होकर आये किन्तु कोई उस कन्या को जीत नहीं सका एक दिन बहुत दूर देश से एक गान विद्या का पंडित पंचाल नाम का संगीताचार्य अपने पांच सौ शिष्यों के साथ उस नगरी में आया राजकन्या की प्रतिज्ञा से वह परिचित हुआ उसने राजा से कहा कि आपकी कन्या गान विद्या में चतुर है मैं भी इस विद्या से परिचित हूँ मैं आपकी पुत्री का गीत संगीत सुनने का इच्छुक हूँ इस तरह की युक्ति से उसने गंधर्वदत्ता के महल के पास अपना निवास स्थान प्राप्त किया मध्य रात्रि के अनंतर शांत वातावरण में वीणा के झंकार के साथ उसने सुमधुर गान प्रारंभ किया गंधर्वदत्ता गहरी नींद में सो रही थी धीरे-धीरे उसके कर्ण प्रदेश में संगीत की लहरियां पहुंची और सहसा वह उठी संगीत की ध्वनि ने उसको ऐसा आकृष्ट किया कि वह बेमान हो जिधर से वह मधुर शब्द आ रहा था उधर दौड़कर जाने लगी और उसका पैर चूक जाने से महल से गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुयी। इस प्रकार कर्णेन्द्रिय के विषय के दोष के कारण असमय में काल कवलित हो गई।

भीम राजा की कथा

कांपिल्य नगर का शासक राजा भीम था वह दुर्बुद्धि माँस भक्षी हो गया नंदीश्वर पर्व में उसे माँस का भोजन नहीं मिला तो उसने रसोइये को कहा कि कहीं से माँस लाओ रसोइया इधर उधर खोजकर जब माँस को नहीं प्राप्त कर सका तो श्मशान से मरे बालक को लाकर उसका माँस राजा को खिलाया राजा तब से नर माँस का लोलुपी हो गया रसोइया उसके लिये गली-गली में घूमकर छोटे-छोटे बच्चों को कुछ मिठाई देकर इकट्ठा करता और छल से एक बालक को पकड़कर मार देता था और

उसका माँस राजा को खिलाता नगर में चंद दिनों बाद इस कुकृत्य का भंडाफोड़ हुआ और नागरिकों ने राजा तथा रसोइये को देश से निकाल दिया दोनों पापी जंगल में घूमने लगे राजा ने भूख से पीड़ित हो रसोइये को मारकर खा लिया अंत में वह पापी नर भक्षक वासुदेव द्वारा मारा गया और अपने पाप का फल भोगने के लिए नरक में पहुंचा।

सुवेग चोर की कथा

मद्दिल्य नाम के नगर में एक भर्तृमित्र नाम का श्रेष्ठी पुत्र रहता था उसकी पत्नी का नाम देवदत्ता था। बसंत ऋतु का समय था सेठ भर्तृमित्र अपने अनेक मित्रों के साथ वसंतोत्सव के लिये वन में गया था वहां पर वसंतसेन नाम के मित्र ने बाण द्वारा आम्र मंजरी को तोड़कर अपनी पत्नी के कर्णाभूषण पहनाये उसे देखकर देवदत्ता ने अपने पति भर्तृमित्र से कहा हे! प्राणनाथ आप भी बाण द्वारा मंजरी तोड़कर मुझे दीजिए, भर्तृ मित्र को बाण विद्या नहीं आती थी अतः वह उसे मंजरी नहीं दे सका उसे बहुत लज्जा आयी। भर्तृमित्र ने मन में निश्चय किया कि मुझे बाण विद्या अवश्य सीखनी है। मेघपुर नाम के नगर में धनुर्विद्या का पंडित रहता था उसके पास जाकर भर्तृमित्र ने बहुत से रत्न देकर तथा उसकी सेवा करके बाण विद्या में अत्यंत निपुणता प्राप्त की। पुनःश्च उस नगर के राजा की कन्या मेघमाला को चंद्रक वेद्य प्रण में जीतकर उसके साथ विवाह किया दोनों सुखपूर्वक रहने लगे। किसी दिन भर्तृमित्र के घर से समाचार आने से उसने राजा से बिदा ली। राज वैभव के साथ रथ में सवार हो मेघमाला एवं भर्तृमित्र मद्दिल नगर की ओर जा रहे थे रास्ते में वन में भीलों की पल्ली आयी वन में आगत पथिकों को लूटना ही उन भीलों का काम था उनका सरदार सुवेग नाम का था। सुवेग मेघमाला का मनोहर रूप देखकर मोहित हुआ और उसका अपहरण करने के लिये युद्ध करने लगा। मेघमाला उसका मन युद्ध से विचलित करने के लिए उसकी तरफ जाने लगी। सुवेग उसके रूप को देखने लगा इतने में भर्तृमित्र ने बाण द्वारा उसके दोनों नेत्र नष्ट कर दिये उससे सुवेग घायल हो मृत्यु को प्राप्त हुआ। भर्तृमित्र मेघमाला के साथ निर्विघ्नरूप से अपने नगर में पहुंच गया।

इस प्रकार सुवेग नेत्रेन्द्रिय के विषय में आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

गोप में आसक्त नागदत्ता की कथा

नासिक्य नगर में सागरदत्त सेठ की सेठानी नागदत्ता थी उसके दो संतानें थी श्री कुमार और श्रीषेणा। सेठानी अपनी गायें चराने वाले नंद नाम के ग्वाले पर आसक्त थी उसने प्रथम तो सेठ को मरवा डाला पुनः पुत्र को मारने में भी उद्यत हुयी पुत्र पहले से अपनी माता के कुकृत्य से अत्यंत दुखी था उसने माता को बहुत कुछ समझाया भी, किन्तु उस पापिनी ने उल्टे उसे मारने का निश्चय और भी दृढ़ किया किसी दिन वह अपने यार नंद को कह रही थी कि तुम श्री कुमार पुत्र को मार डालो। इस रहस्य को पुत्री श्रीषेणा ने सुना और भाई को सावधान किया। गाय चराने को एक दिन माता ने ग्वाले को न भेजकर पुत्र को भेजा पुत्र समझ गया कि आज धोखा है। वह जंगल में जाकर अपने वस्त्र एक लकड़ी के ठूंठको पहनाता है और स्वयं छिप जाता है। पीछे से ग्वाला आकर ठूंठ को कुमार समझकर भाला मारता है कि इतने में कुमार उसी भाले से नंद ग्वाले को मौत के घाट उतार देता है। घर में आने पर नागदत्ता पूँछती है कि नंद कहाँ है ? पुत्र उत्तर देता है इस बात को यह भाला जानता है नागदत्ता समझ जाती है कि अपने यार की मृत्यु हो चुकी है, क्रोध में आ वह पापिनी मूसल से श्री कुमार का मस्तक फोड़ देती है। पुत्री श्रीषेणा इतने में आकर उसी मूसल से नागदत्ता माता को मार देती है इस प्रकार वह पापिनी परपुरुष आसक्त नागदत्ता स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में आसक्त होकर सर्व कुटुंब का नाश कर नरकगामिनी हुयी।

द्वीपायन मुनि की कथा

सोरठ देश में प्रसिद्ध द्वारिका नगरी थी इसमें बलदेव और कृष्ण नारायण राज्य करते थे किसी दिन दोनों बलभद्र नारायण भगवान नेमीनाथ के दर्शन के लिये समवशरण में गये धर्मोपदेश सुनने के अनंतर बलभद्र ने प्रश्न किया कि यह द्वारिका कब तक समृद्धशाली रहेगी दिव्य ध्वनि में उत्तर मिला कि बारह वर्ष बाद शराब के कारण द्वीपायन द्वारा

द्वारिका भस्म होगी एवं जरत्कुमार द्वारा श्री कृष्ण की मृत्यु होगी। इस भावी दुर्घटना को सुनकर सभी को दुख हुआ, बहुत से दीक्षित हुए, द्वीपायन ने भी मुनि दीक्षा ग्रहण कर दूर देश में जाकर तपस्या की द्वारिका की सब शराब वन में डाली गयी। बारह वर्ष में कुछ दिन शेष थे, द्वीपायन मुनि नगर के निकट आकर ध्यान करने लगे बहुत से यदुवंशी राजकुमार वन क्रीड़ा के हेतु गये थे। वहाँ तृषा से पीड़ित होकर शराब मिश्रित पानी को उन्होंने पी लिया और उन्मत्त हो गये पास में द्वीपायन मुनि को देखकर वे कुमार उनको पत्थरों से मारने लगे मुनि को क्रोध आया और उसके कंधे से तैजस पुतला निकल गया, उस तैजस पुतले से समस्त द्वारिका भस्म हो गयी द्वीपायन भी भस्म हुए और कुगति में चले गये।

सगरचक्री के साठ हजार पुत्रों की कथा

इस अवसर्पिणी काल के बारह चक्रवर्ती में से सगर दूसरे चक्री हुए उनके आठ हजार पुत्र थे वे सभी बल वीर्य पराक्रम के धारक थे उन सबने मिलकर एक दिन पिता से कहा कि हम सबको कोई राज्य आदि संबंधी कार्य बताइये पिता ने कहा पुत्रो! यहां कार्य करने की क्या आवश्यकता। सुखपूर्वक रहो। किन्तु पुत्रों के अधिक आग्रह होने से चक्री ने कहा कैलाश पर्वत के चारों ओर खाई खोदकर उसमें गंगाजल भर दो सब पुत्र प्रसन्न हुए उन्हें अपने बल पराक्रम का बड़ा ही अभिमान था दण्ड रत्न को लेकर खाई खोदने कैलाश की ओर चल पड़े।

सगर चक्रवर्ती का पूर्व जन्म का एक मित्र देव हुआ था वह सगर को जिनदीक्षा दिलाना चाहता था इस विषय में उसने पहले प्रयत्न भी किये थे किन्तु वे प्रयत्न सफल नहीं हुये थे अतः दण्ड रत्न से धरणी को खोदते हुए उन चक्री के पुत्रों को देखकर चक्री को वैराग्य उत्पन्न कराने हेतु उस देव ने अपनी माया से पुत्रों को बेहोश कर दिया (मार दिया) जब यह वार्ता मंत्री आदि को विदित हुयी तब से अत्यंत विचार में पड़ गये कि यह हाल चक्री को कैसे सुनाया जाय फिर भी किसी बहाने से चक्री तक यह वार्ता पहुंचायी प्रथम सगर ने बहुत शोक किया किन्तु

फिर वैराग्य रूप अमृत जल से शोकाग्नि को शांत कर उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली अब उस मित्रवर देव का मनोरथ पूर्ण हुआ उसने सगर मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दी नमस्कार किया और सर्व सत्य वृतांत कह दिया सगर अब संपूर्ण मोह माया से मुक्त हो चुके थे उन्हें कुछ संताप नहीं हुआ वैराग्य तथा ज्ञान शक्ति से उन्होंने अपना कल्याण कर लिया। इस प्रकार बल के अभिमान के कारण चक्री के सब पुत्र नष्ट हो गये थे।

मायावी भरत कुम्हार की कथा

अंगक नाम के देश में बृहद ग्राम में एक कुम्हार रहता था एक दिन बहुत से मिट्टी के बर्तनों को बैल पर लादकर वह कुम्हार दूसरे ग्राम में बेचने के लिये गया गांव के बाहर बैल को खड़ाकर के वह ठहर गया ग्रामीण लोग बालक स्त्रियां आदि ने उसमें घड़े दिये सकोरे आदि खरीद लिये और कुम्हार को भोला जानकर किसी ने उसको बर्तनों का मूल्य नहीं दिया उसको कहा कि कल देवेंगे बालक उसके साथ हंसी मजाक करने लगे संध्या हो गयी कुम्हार ने दुखित मन से रात पूर्ण की रात में किसी ने उसके बैल को भी चुरा लिया प्रातः जब किसी ने बर्तन के रुपये नहीं दिये तब कुम्हार अत्यंत कुपित हो गया उसने घर-घर में जाकर पैसे मांगे किन्तु किसी ने कुछ नहीं दिया कुम्हार ने उस गांव में आग लगा दी सात वर्ष तक धान्यों से भरे उस ग्राम को वह जलाता रहा और उसने महान पाप संचय किया इस प्रकार क्रोध के वश में हुए कुम्हार का उभय लोक नष्ट हो गया।

कार्त्तवीर्य की कथा

एक वन में जटाधारी तापसियों का आश्रम था उसमें एक जमदग्नि नाम का मिथ्या तापसी रेणुका स्त्री एवं खेतराम और महेन्द्रराम नाम के दो पुत्रों के साथ रहता था एक दिन उस वन में हाथी पकड़ने को कार्त्तवीर्य नाम का राजा आया वह थककर विश्राम हेतु जमदग्नि के कुटी के पास बैठा था रेणुका ने उसको मिष्ठान्न द्वारा तृप्त किया आश्चर्य युक्त हो राजा ने प्रश्न किया कि इतना श्रेष्ठ भोजन तुम लोगों के पास

इस निर्जन वन में कहां से आया ? रेणुका ने कहा कि हमारे पास कामधेनु है उसके द्वारा सब कुछ मिलता है, राजा को कामधेनु का लोभ सताने लगा उसने उसकी याचना की किन्तु जमदग्नि ने मना किया तब उस लोभी अन्यायी राजा ने हठात् कामधेनु का हरण कर लिया और जमदग्नि को मारकर अपने नगर लौट आया। इधर खेतराम महेन्द्रराम वन से ईंधन को लेकर कुटी में पहुंचे और पिता को मरा देखकर बहुत दुखी हो गये दोनों पुत्र अत्यंत पराक्रमी थे उन्हें देवोपुनीत शस्त्र परशु भी प्राप्त था उन्होंने कार्त्तवीर्य को सेना सहित नष्ट कर दिया, सर्व वंश का सर्वथा नाश कर डाला और दोनों भाई उस राज्य के स्वामी बन गये।

इस प्रकार लोभ के कारण कार्त्तवीर्य नरेश मारा गया और मरकर नरक में चला गया।

सुकुमाल मुनि की कथा

अवन्ति देश के उज्जैन नगर में रहने वाले सुरेन्द्रदत्त सेठ और यशोभद्रा सेठानी के एक सुकुमाल नाम पुत्र था जो इतना सुकुमार था कि उसको आसन पर पड़े हुए राई के दाने भी चुभते थे दीपक की लौ भी वे देख नहीं सकते थे और अतुल वैभव के बीच स्वर्गोपम भोगों को भोगते हुए सुखपूर्वक अपना जीवन यापन कर रहे थे। एक दिन आपके मामा यशोभद्र मुनिराज त्रिलोक प्रज्ञप्तिका पाठ कर रहे थे उसे सुनकर इन्हें जाति स्मरण हो गया उसी समय महल से निकलकर मुनिराज के पास जाकर दीक्षित हो गये। अपनी आयु मात्र तीन दिन की जानकर सुकुमाल मुनि जंगल में चले गये और वहाँ प्रायोपगमन सन्यास लेकर आत्मध्यान में लीन हो गये उसी समय पूर्व भव के बैर संस्कार के वशीभूत होती हुई एक स्यालनी बच्चों सहित आई उनके शरीर को खाना शुरू कर दिया तथा तीन दिन तक निरन्तर खाती रही इस भयंकर उपसर्ग के आ जाने पर भी सुकुमाल मुनि सुमेरू सदृश निश्चल रहे और अपनी चारों आराधनाओं के अवलम्बन में समतापूर्वक शरीर को त्यागकर अच्युत स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए।

सुकौशल मुनि की कथा

अयोध्या नगरी में प्रजापाल राजा राज्य करते थे उसी नगर में सिद्धार्थ नामक सेठ अपनी सहदेवी आदि 32 स्त्रियों के साथ सुख से रहते थे। बहुत समय व्यतीत हो जाने के बाद उनके सुकौशल नाम का पुत्र हुआ, जिसका मुख देखते ही सिद्धार्थ सेठ मुनि हो गये। सुकौशल कुमार का भी 32 कन्याओं से विवाह हुआ उनके साथ वे महाविभूतिका उपभोग करते हुए सुख से जीवन यापन करने लगे। एक समय विहार करते हुए सिद्धार्थ मुनि भिक्षार्थ अयोध्या आये, इन्हें देखकर मेरा पुत्र मुनि हो जायेगा, इस भय से सेठानी ने उन्हें नगर से बाहर निकलवा दिया। जो एक दिन इस नगर के स्वामी थे उन्हीं का आज इतना अनादर किया जा रहा है यह सोचकर सुकौशल की धाय को बहुत दुख हुआ। वह रोने लगी सुकौशल ने उनके रोने का कारण पूँछा धाय से (अपने पिता) मुनिराज के अपमान की बात सुनकर उन्हें दुख हुआ और उसी समय उन्हीं मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा की बात सुनते ही सुकौशल की माँ अत्यन्त दुखी हुयी और पुत्र वियोग जन्य आर्त्तध्यान से मरकर मगध देश के मौद्‌गिल नामक पर्वत पर व्याघ्री हुयी। सिद्धार्थ और सुकौशल मुनिराज ने उसी पर्वत पर योग धारण किया था। योग समाप्त होने पर भिक्षा के लिए पर्वत से उतरते हुए युगल मुनिराजों को व्याघ्री ने देखा और झपट कर अपने ही पुत्र सुकौशल मुनि को खोजने लगी मुनिराज ने उपसर्ग प्राप्त होने पर समाधि द्वारा प्राण त्याग दिये और सर्वार्थसिद्धि में गये।

गजकुमार मुनि की कथा

श्री कृष्ण नारायण के सुपुत्र गजकुमार अति सुकुमार थे। वे अपने पिता आदि के साथ धर्मोपदेश सुनने के लिए भगवान नेमिनाथ के समोशरण में जा रहे थे। मार्ग में एक ब्राह्मण की नव-यौवना, सर्वगुणसम्पन्ना, सुलक्षणा और सौन्दर्यमूर्ति पुत्री को देखकर श्री कृष्ण ने उसे उसके पिता से गजकुमार के लिए मंगनी कर ली और उसे अन्तपुर में भिजवा दिया। भगवान का उपदेश सुनकर श्री कृष्ण तो सपरिवार द्वारका लौट आये

परन्तु गजकुमार नहीं लौटे और जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके किसी एकान्त स्थान में ध्यानारूढ़ हो गये। जिस लड़की का संबंध गजकुमार से हुआ था उसका पिता जंगल से काष्ठ भार को लेकर लौट रहा था उसकी दृष्टि जैसे ही गजकुमार पर पड़ी वह आग बबूला हो उठा और बोला अरे दुष्ट मेरी अत्यन्त प्रिय सुकुमारी पुत्री को विधवा बना कर तू साधु बन गया है, मैं देखता हूँ तेरी साधुता को ऐसा कहकर उस दुष्ट ने मुनिराज के शरीर में कीलें ठोक दी।

गीले चमड़े में जैसे कोलें ठोकते है उस घोर वेदना को सहनकर गजकुमार महामुनि अतंकृत केवली हुए।

सनत्कुमार मुनि की कथा

भारतवर्ष के अंतर्गत पीतशोक नगर में राजा अनन्तवीर्य रानी सीता के साथ कालयापन करते थे। उनके सनत्कुमार नाम का अत्यन्त रूपवान् पुत्र उत्पन्न हुआ जो महापुण्योदय से चक्रवर्ती की विभूति को प्राप्त कर नवनिधि और 14 रत्नों का स्वामी हुआ। एक दिन सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अपनी सभा में उनके रूप की प्रशंसा कर रहा था, जिसे सुनकर मणिमाल और रत्नचूल नाम के दो देव गुप्त भेष में आये थे और स्नान करते हुए चक्रवर्ती का त्रिभुवन प्रिय सर्व सुन्दर रूप देखकर आश्चर्यान्वित हुए। इसके बाद उन देवों ने अपने असली वेष में आकर वस्त्रालंकारों से अलंकृत सिंहासन पर स्थित चक्रवर्ती के रूप को देखा और खेदित हो उठे राजा ने इसका कारण पूछा तब देव बोले महाराज यथार्थ में आपका रूप देवों को भी दुर्लभ है। इसकी तो हमें प्रसन्नता है किन्तु मनुष्य का रूप क्षणाक्षयी है यह देखकर हमें खेद हुआ जो रूप कुछ समय पहिले स्नानगृह में देखा था वह अब दिखायी नहीं देता यह बात सभासदों की समझ में नहीं आई तब देवों ने एक पानी से भरा हुआ घड़ा मंगाया और उसमें से एक बूंद जल निकालकर सभासदों से पूंछा कि बताओ पहिले से इस घड़े में कुछ विशेषता दिखायी दी क्या ? यह सब चमत्कार देखकर चक्रवर्ती को वैराग्य हो गया और वे जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके तपश्चरण में संलग्न हो गये। पूर्व पापोदय से उनके सारे शरीर में भयंकर

कुष्ट रोग उत्पन्न हो गया एक देव उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए वैद्य का वेष धारण करके आया और उपचार कराने का आग्रह करने लगा तब मुनिराज बोले भो वैद्य मुझे जन्म मरण का भयंकर रोग दुख दे रहा है यदि आप इस रोग की चिकित्सा कर सकते हो तो करो। महाराज की बात सुनकर वैद्य अत्यन्त लज्जित हुआ और चरणों में गिरकर बोला स्वामिन् इस रोग की रामबाण औषधि तो आपके पास ही है। इस प्रकार देव मुनिराज के निर्दोष चारित्र को और शरीर में निर्मोहपने की प्रशंसा करता हुआ स्वर्ग चला गया और सनत्कुमार मुनिराज ने अपने धैर्य से उस परीषह पर विजय प्राप्त की और अष्टकर्मों को नष्ट कर मोक्ष लक्ष्मी के स्वामी बने।

पणिक-एणिक पुत्र मुनि की कथा

पणीश्वर नामक नगर में राजा प्रजापाल राज्य करते थे वहाँ एक सागरदत्त सेठ अनी पणिका नाम की स्त्री के साथ आनन्द से रह रहा था। उन दोनों के एक पणिक नाम का पुत्र था, जो सरल, शान्त और पवित्र हृदय का था। एक दिन पणिक भगवान के समवशरण में गया वहाँ उसने गंध कुटी में स्थित वर्द्धमान स्वामी का दिव्य स्वरूप देखा जिससे उसके रोम-रोम पुलकित हो उठे भगवान की स्तुति और पूजन आदि कर चुकने के बाद पणिक ने धर्मोपदेश सुना और अपनी आयु के विषय में प्रश्न भी किया तथा अल्प आयु जानकर वह वहीं दीक्षित हो गया। दीक्षा लेकर पणिक मुनिराज अनेक देशों में विहार करते हुए गंगापार करने के लिए एक नाव में बैठे। मल्लाह सुचारु रीति से नाव खे रहा था कि अचानक भयंकर आंधी आई, नाव डगमगाने लगी, उसमें पानी भर गया फलस्वरूप नाव डूबने ही वाली थी कि पणिक मुनिराज ने विशेष आत्म विशुद्धि के साथ शुक्लध्यान में लीन हो गये और केवलज्ञान की प्राप्ति के साथ ही मोक्ष प्राप्त कर लिया।

धर्मघोष मुनि की कथा

धर्ममूर्ति परम तपस्वी धर्मघोष मुनिराज एक माह के उपवास कर के चम्पापुरी नगर में पारणा के अर्थ गये थे। पारणा करके तपोवन

की ओर लौटते हुए रास्ता भूल गये जिससे चलने में अधिक परिश्रम हुआ और उन्हें तृषा वेदना उत्पन्न हो गयी वे गंगा किनारे आकर एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गये उन्हें प्यास से व्याकुल देख गंगादेवी पवित्र जल से भरा हुआ लोटा लाकर बोली-योगिराज में ठण्डा जल लायी हूँ आप इसे पीकर अपनी प्यास शांत कीजिए मुनिराज ने जल तो ग्रहण नहीं किया और प्राण हरण करने वाली तृषा वेदना मात्र ज्ञाता दृष्टा बनते हुये ध्यानारूढ़ हो गये यह देखकर देवी चकित हुयी और विदेह क्षेत्र जाकर समवशरण में प्रश्न किया कि जब मुनिराज प्यासे हैं तो जल ग्रहण क्यों नहीं करते। वहाँ गणधर देव ने उत्तर दिया कि दिगम्बर साधु न तो असमय भोजन पान ग्रहण करते हैं और न देवों द्वारा दिया गया आहार आदि ही ग्रहण करते हैं यह सुनकर देवी बहुत प्रभावित हुयी और उसने मुनिराज को शांति प्राप्त कराने के हेतु उनके चारों ओर सुगन्धित और ठंडे जल की वर्षा प्रारम्भ कर दी यहाँ मुनिराज ने आत्मोत्थ अनुपम सुख के रसास्वाद द्वारा कर्मोत्पन्न तृषा वेदना पर विजय प्राप्त की और चार घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

श्री दत्त मुनि की कथा

इलाबर्धन नगरी के राजा का नाम जितशत्रु था उनकी इला नाम की रानी थी, जिससे श्री दत्त नामक पुत्र ने जन्म लिया। श्री दत्त कुमार का विवाह अयोध्या के राजा अंशुमान की पुत्री अंशुमति से हुआ था। अंशुमती ने एक तोता पाल रखा था चौपड़ आदि खेलते हुए जब राजा विजयी होता तब तो तोता एक रेखा खीचंता और जब रानी जीतती थी तब चालाकी से दो रेखाएँ खींच देता था उसकी यह शरारत दो चार बार तो राजा ने सहन कर ली आखिर उसे गुस्सा आ गया और उसने तोते की गरदन मरोड़ दी तोता मरकर व्यन्तर देव हुआ श्रीदत्त राजा को एक दिन बादल की टुकड़ी को छिन्न-भिन्न होते देखकर वैराग्य हो गया और उन्होंने संसार परिभ्रमण का अन्त करने वाली जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। अनेक प्रकार के कठोर तपश्चरण करते हुए और अनेक देशों में विहार करते हुए श्री दत्त मुनिराज इलावर्धन नगरी आये और नगर के

बाहर कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हो गये ठण्ड कड़ाके की पड़ रही थी। उसी समय सुकचर व्यन्तर देव ने पूर्व बैर के कारण मुनिराज पर घोर उपसर्ग प्रारम्भ कर दिया वैसे ही ठण्ड का समय था और उस देव ने शरीर को छिन्न-भिन्न कर देने वाली खूब ठण्डी हवा चलायीं पानी बरसाया तथा खूब ओले गिराये पर मुनिराज ने अपने धैर्य रूपी गर्भगृह में बैठकर तथा समता रूपी कपाट बंद करके संयमादि गुण रत्नों को उस जल के प्रवाह में नहीं बहने दिया, उसके फलस्वरूप वे उसी समय केवलज्ञान को प्राप्त करते हुए मोक्ष पधारे।

वृषभसेन मुनि की कथा

उज्जैन के राजा प्रद्योत एक दिन हाथी पर बैठकर हाथी पकड़ने के लिए जंगल की ओर जा रहे थे रास्ते में हाथी उन्मत्त हो उठा और इन्हें भगाकर बहुत दूर ले गया। राजा प्रद्योत एक वृक्ष की डाल पकड़कर ज्यों त्यों बचे प्यास से व्याकुल चलते हुये ये खेट ग्राम के कुएँ पर पहुँचे। उसी समय जल भरने के निमित्त से आई हुयी जिनपाल की पुत्री जिनदत्ता ने उन्हें जल पिलाया और पिता से जाकर सब समाचार कह दिये ये कोई महापुरुष हैं ऐसा विचार कर जिनपाल उन्हें आदर सत्कारपूर्वक अपने घर ले गया और जिनदत्ता के साथ उसकी शादी कर दी। जिनदत्ता को पट्टरानी के पद पर नियुक्त कर राजा सुख से रहने लगा समय पाकर उन दोनों के वृषभसेन नाम का पुत्र हुआ। वृषभसेन जब आठ वर्ष के थे तब राजा प्रद्योत पुत्र को राज्य भार देकर दीक्षा लेना चाहते थे पुत्र ने दीक्षा लेने का कारण पूँछा पिता ने कहा- बेटा राज्य का भोग भोगते हुये सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती, उसके लिए तपश्चरण आवश्यक है सच्चे सुख की बात सुनकर बहुत समझाए जाने पर भी पुत्र ने जिनदीक्षा धारण कर ली। वृषभसेन मुनिराज तपस्या करते हुये अकेले ही अनेक देशों में घूमते हुए कौशाम्बी नगरी में आये और छोटी सी पहाड़ी पर ठहर गये गर्मी का समय था धूप तेज पड़ रही थी मुनिराज एक पवित्र शिला पर बैठकर ध्यान करते थे कड़ी धूप में इस प्रकार की योग साधना तथा आत्मतेज से उनके शरीर का सौन्दर्य इतना देदीप्यमान हो उठा कि लोगों

के मन में उनकी श्रद्धा अति दृढ़ होती गयी और जैनधर्म का प्रभाव वृद्धिंगत होने लगा एक दिन महाराज के उस ध्यान करने के लिए बैठने की शिला को अग्नि से तपा दिया मुनिराज आहार से लौटे शिला को संतप्त देख समझ गये कि यह उपसर्ग आया है उन धीर मुनिराज ने उसी तप्त शिला पर आरूढ़ हो समाधिपूर्वक आराधना को साधते हुए प्राण त्याग किया और उत्तमगति प्राप्त की।

कार्तिकेय मुनि की कथा

राजा अग्निदत्त के वीरवती रानी से कृतिका नाम की पुत्री हुयी जब वे यौवनवती हुयी तो राजा उस पर मोहित हो गया उसने छल से राजसभा में प्रश्न किया कि राजमहल में जो भी पदार्थ है उन सबका स्वामी कौन होता है मंत्री आदि ने कहा आप ही तो स्वामी हैं किन्तु वहां पर उपस्थित जैन मुनि ने कहा राजन् कन्याओं को छोड़कर और सब पदार्थों के स्वामी आप हैं राजा को यह मुनि वाक्य रुचा नहीं रुचता भी कैसे कामी को कभी भी गुरु के वाक्य रुचते नहीं राजा ने जबरदस्ती अपनी पुत्री कृतिका के साथ विवाह कर लिया।

कुछ समय बाद उसके दो संतानें हुयी एक पुत्र और एक पुत्री यथासमय पुत्री वीरमति का विवाह रोहेडक नाम के नगर के राजा क्रौंच के साथ हुआ पुत्र कार्तिकेय अभी अविवाहित था। एक दिन मित्रों के यहाँ नाना के घर से वस्त्राभूषण आये देख उसने माता से प्रश्न किया कि हमारे नाना के यहां से वस्त्राभूषण क्यों नहीं आते पुत्र का प्रश्न सुनकर माता के हृदय पर मानो वज्रपात ही हुआ नयन नीर से भर आये माता की दशा देखकर पुत्र ने कारण पूछा बहुत हठ करने पर माता ने सब कह डाला कि तुम्हारा पिता ही नाना है कार्तिकेय का हृदय ग्लानि से भर गया उसने कहा माता ऐसे कुकृत्य को करते हुए राजा को किसी ने नहीं रोका। माता ने कहा जैन मुनि ने रोका था किन्तु राजा ने सुना नहीं उलटे उन मुनि को नगर से बाहर निकाल दिया। कार्तिकेय का मन वैराग्य युक्त हुआ उसने वन में जाकर मुनिराज से जिनदीक्षा ग्रहण की क्रमशः विहार करते हुए कार्तिकेय मुनि रोहेडक नगरी में आये जहाँ उनकी बहिन

राजा क्रौंच से ब्याही थी। मुनिराज को राजमार्ग से आते हुए देखकर वीरमति बहिन ने उन्हें पहिचान लिया और धर्म प्रेम तथा भ्राता प्रेम विह्वल हो समीप में बैठे राजा को बिना पूंछे ही वह शीघ्रता से महल से उतरकर मुनिराज के चरणों में गिरी। राजा विधर्मी था मुनि के स्वरूप को नहीं जानता था उसने क्रोध में आकर कर्मचारियों को आज्ञा दी कि इस व्यक्ति की चमड़ी-चमड़ी छील डालो। कर्मचारियों द्वारा मुनिराज पर महान् उपसर्ग प्रारंभ हुआ उन का सारा तन छेदा गया किन्तु भेदज्ञानी परम ध्यान में लीन मुनिराज ने अत्यंत शांत भाव से सल्लेखनापूर्वक प्राण त्याग किया धन्य है कार्तिकेय मुनिराज जिन्होंने घोर वेदना में भी आत्मध्यान नहीं छोड़ा।

अभयघोष मुनि की कथा

काकन्दीपुर में राजा अभयघोष राज्य करते थे उनकी रानी का नाम अभयमती था। इन दोनों में अत्यंत प्रीति थी। एक दिन राजा अभयघोष घूमने जा रहे थे, रास्ते में उन्हें एक मल्लाह मिला जो जीवित कछुए के चारों पैर बांधकर लकड़ी में लटकाये हुए जा रहा था। राजा ने अज्ञानता वश तलवार से उसके चारों पैर काट दिये कछुआ तड़फड़ा कर मर गया और अकाम निर्जरा के फल से उसी राजा के चण्डवेग नाम का पुत्र हुआ।

एक दिन चन्द्रग्रहण देख कर राजा को वैराग्य हो गया उसने पुत्र को राज्य भार सौंपकर दीक्षा धारण कर ली। वे कई वर्षों तक गुरु के समीप रहे इसके बाद संसार समुद्र से पार करने वाले और जन्म, जरा तथा मृत्यु को नष्ट करने वाले अपने गुरु महाराज से आज्ञा लेकर और उन्हें नमस्कार करके धर्मोपदेशार्थ अकेले ही विहार कर गये। कितने ही वर्षों बाद घूमते-घूमते काकन्दीपुर आये और वीरासन में स्थित होकर तपस्या करने लगे इसी समय जो कछुवा मरकर उनका पुत्र चण्डवेग हुआ था वह वहाँ से आ निकला और पूर्वभव (कछुआ की पर्याय) की कषाय के संस्कार वश तीव्र क्रोध से अन्धे होते हुए उन चण्डवेग ने उनके हाथ पैर काट दिये और तीव्र कष्ट दिया। इस भयंकर उपसर्ग के आ जाने पर

भी अभयघोष मुनिराज मेरू सदृश निश्चल रहे और शुक्लध्यान बल से अक्षयानन्त मोक्ष लाभ किया।

विद्युच्चर मुनि की कथा

मिथिलापुर के राजा वामरथ के राज्य में यमदण्ड नाम का कोतवाल और विद्युच्चर नाम का चोर था। विद्युच्चर चोरियाँ बहुत करता था, पर अपनी चालाकी के कारण पकड़ा नहीं जाता था। वह दिन को कुष्ठी का रूप धारण कर किसी शून्य मन्दिर में गरीब बन कर रहता था और रात्रि में दिव्य मनुष्य का रूप धारण कर चोरी करता था। एक दिन उसने अपने दिव्य रूप से राजा को मोहित कर उनके देखते देखते हार चुरा लिया। राजा ने कोतवाल को बुलाकर सात दिन के भीतर चोर को पकड़ लाने की आज्ञा दी। छह दिन व्यतीत हो जाने पर भी चोर नहीं पकड़ा गया। सातवें दिन देवी के सुनसान मंदिर में एक कोढ़ी को पड़ा हुआ देखकर कोतवाल को उसके ऊपर संदेह हुआ और उसने उसे बहुत मार लगायी परन्तु कोढ़ी ने अपने को चोर स्वीकार नहीं किया तब राजा ने कहा अच्छा में तेरा सर्व अपराध क्षमा करता हूँ और अभय का वचन देता हूँ। तू यथार्थ बात बतला दे! अभय की बात सुनते ही कोढ़ी, रूपधारी विद्युच्चर बोला महाराज में आभीर प्रान्त के अंतर्गत वेनातट शहर के राजा जितशत्रु और रानी जयावती का विद्युच्चर नाम का पुत्र है और यह यमदण्ड उसी राजा के यमपास कोतवाल का पुत्र है। मैंने बचपन में विनोद के लिए चौर्यशास्त्र का अध्ययन किया था और अपने मित्र यमदण्ड से कहा था कि जहाँ आप कोतवाली करेंगे, वहीं में चोरी करूँगा। हम दोनों के पिता अपना-अपना कार्यभार हम लोगों को सौंपकर दीक्षित हो गये। मेरे भय से यमदण्ड यहां भाग आया और अपनी बचपन की प्रतिज्ञापूर्ण करने के उद्देश्य से मैंने भी यहां आकर चोरी का कार्य प्रारम्भ कर दिया। विद्युच्चर की बात सुनकर राजा वामरथ बड़ा प्रसन्न हुआ। विद्युच्चर अपने मित्र यमदण्ड को लेकर अपने नगर चला गया किन्तु इस घटना से वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली वैराग्य हो गया और संघ सहित विहार

करते हुए विद्युच्चर मुनिराज ताम्रलिप्त पुरी की ओर आये नगर में प्रवेश करने को थे कि वहाँ की चामुण्डा देवी ने कहा हे साधो अभी मेरी पूजा विधि हो रही है आप भीतर मत जाइये इस प्रकार रोके जाने पर भी महाराज श्री अपने शिष्यों के आग्रह से भीतर चले गये और परकोटे के पास की भूमि देखकर बैठ गये तथा ध्यानारूढ़ हो गये अपनी अवज्ञा जानकर देवी को क्रोध आ गया और उसने कबूतरों के आकार के खून पीने वाले डांस मच्छरों की सृष्टि करके मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया। मुनिराज ने यह उपसर्ग बड़ी शांति से सहन किया और अपने मन को चारों आराधनाओं में रमाते हुए मोक्षनगर के स्वामी बने।

गुरुदत्त मुनि की कथा

हस्तिनापुर में गुरुदत्त नाम के राजा राज्य करते थे उसी समय द्रोणमति पर्वत के समीप चन्द्रपुरी नगरी में राजा चन्द्रकीर्ति था, उसकी अभयमती नाम की अनिंद्य सुंदरी कन्या हुई। गुरुदत्त ने उस कन्या की मांग की किन्तु चन्द्रकीर्ति ने मना किया उससे कुपित होकर गुरुदत्त ने उस पर चढ़ाई कर दी। अभयमती को जब यह वृत्तांत ज्ञात हुआ तब उसने पिता से प्रार्थना की कि मेरा इस जन्म में गुरुदत्त ही पति हो ऐसा मेरा प्रण है अतः आप उसी से विवाह कर दीजिए। पुत्री की बात पिता को माननी पड़ी। मंगल बेला में विवाह सम्पन्न हुआ। गुरुदत्त राजा अभयमती के साथ आनंद से रहने लगा। द्रोणमति पर्वत में रहने वाला एक सिंह जनता को बहुत कष्ट दे रहा है ऐसा सुनकर गुरुदत्त राजा वहां आया और सिंह की गुफा में चारों ओर आग लगाकर सिंह को जला दिया सिंह अकाम निर्जरा करके उसी चन्द्रपुरी में ब्राह्मण का पुत्र हुआ।

गुरुदत्त नरेश कुछ समय तक राज्य करके दीक्षित होते है और क्रमशः विहार करते हुए उसी द्रोणमति पर्वत के निकट उसी कपिल ब्राह्मण के खेत में ध्यानस्थ होते है। उस समय कपिल अपनी पत्नी को खेत पर भोजन लाने के लिए कहकर खेत पर आया। वहां मुनि को देखकर उस खेत को उचित नहीं समझा अतः दूसरे खेत में जाने का सोचा, उसने मुनिराज से कहा में दूसरे खेत पर जा रहा हूँ, मेरी पत्नी

भोजन लेकर आयेगी उसको कह देना। मुनि ध्यानस्थ थे उन्होंने कपिल की पत्नी को पूछने पर भी कुछ उत्तर नहीं दिया ब्राह्मणी घर चली गयी कपिल को समय पर भोजन नहीं मिला अतः घर में आने पर पत्नी को पीटना प्रारंभ किया। ब्राह्मणी ने घबड़ाकर कहा कि मैं तो खेत पर गयी थी किन्तु आप नहीं मिले वहां पर एक महात्मा बैठे थे उन्हें भी पूछा किन्तु कुछ उत्तर नहीं मिलने से वापिस आयी हूँ इतना सुनते ही कपिल का क्रोध और अधिक बढ़ गया। उसने तत्काल खेत में जाकर सेमर नाम की रूई से मुनिराज गुरुदत्त को लपेट दिया और आग लगा दी उस घोर उपसर्ग को धीर वीर मुनि ने अत्यंत शांतभाव से सहा। वे शरीर को ममता का त्यागकर शुक्लध्यान में लीन हो गये और ध्यान द्वारा केवलज्ञान को प्राप्त किया।

केवल की पूजा के लिये चतुर्निकाय देव आये कपिल ब्राह्मण को बहुत पश्चात्ताप हुआ उसने गुरुदत्त केवली से पुनः पुनः क्षमा माँगी और उनकी दिव्य देशना द्वारा अपना कल्याण किया। देखो! काष्ट के समान शरीर जलते हुए भी गुरुदत्त मुनिराज आत्मा में लीन हुए और केवलज्ञान प्राप्त किया।

चिलातपुत्र मुनि की कथा

राजगृह नगरी में राजा उपश्रेणिक राज्य करते थे एक दिन वे घोड़े पर बैठकर घूमने गये। घोड़ा दुष्ट था सो उसने उन्हें एक भयानक वन में छोड़ा उस वन का मालिक यमदण्ड नाम का भील था। उसके एक तिलकवती नाम की सुन्दर कन्या थी। राजा ने उसकी माँग की इसका पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा इस शर्त के साथ भील ने कन्या राजा को सौंप दी उससे चिलातपुत्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ राजा अपने वचनानुसार राज्य का भार उसे सौंप कर दीक्षित हो गये। राजा बनते ही चिलातपुत्र प्रजा पर नाना प्रकार के अन्याय करने लगा। जब कुमार श्रेणिक ने यह बात सुनी तब उन्होंने अपने पौरुष से चिलातपुत्र को राज्य से बहिष्कृत करके पिता का राज्य संभाला अर्थात् वे मगध के सम्राट बन गये। चिलातपुत्र मगध से निकलकर किसी वन में जाकर बस गया और

आसपास के ग्रामों से जबरदस्ती कर वसूल कर उनका मालिक बन बैठा। उसका भर्तृमित्र नाम का मित्र था। भर्तृमित्र ने अपने मामा रुद्रदत्त से उनकी कन्या सुभद्रा चिलातपुत्र के लिए मांगी। रुद्रदत्त ने इसे स्वीकार नहीं किया तब चिलातपुत्र ने विवाह स्नान करती हुयी सुभद्रा का हरण कर लिया जब यह बात श्रेणिक ने सुनी तब वह सेना लेकर उनके पीछे दौड़ा श्रेणिक से अपनी रक्षा न होते देख चिलात ने उस कन्या को निर्दयतापूर्वक मार डाला और आप अपनी जान बचाकर वैभार पर्वत पर से भागा जा रहा था कि उसे वहां मुनियों का एक संघ दिखाई दिया और उसने उनसे दीक्षा की याचना की, तेरी आयु अब मात्र आठ दिन की रही है। ऐसा कहकर आचार्य ने उसे दीक्षा दे दी। दीक्षा लेकर चिलात मुनिराज प्रायोपगमन सन्यास लेकर आत्मध्यान में लीन हो गये सेना सहित पीछा करने वाले श्रेणिक ने जब उन्हें इस अवस्था में देखा तब वे बहुत आश्चर्यान्वित हुए और मुनिराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके राजगृह लौट आए चिलातपुत्र ने जिस कन्या को मारा था वह मरकर व्यंतर देवी हुई और इसने मुझे निर्दयतापूर्वक मारा था इस बैर का बदला लेने हेतु वह चील का रूप ले चिलात मुनि के सिर पर बैठ गई उसने उनकी दोनों आंखें निकाल ली और सारे शरीर को छिन्न भिन्न कर दिया जिससे उनके घावों में बड़े-बड़े कीड़े पड़ गये इस प्रकार आठ दिन तक वह देवी उन्हें अनिर्वचनीय वेदना पहुँचाती रही किन्तु मन, इन्द्रियों और कषायों को वश में करने वाले मुनिराज अपने ध्यान में किंचित् भी विचलित नहीं हुए तथा समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर सर्वाथसिद्धि की प्राप्ति की।

चंड या दंड नाम के मुनि की कथा

पूर्व विदेह क्षेत्र की प्रसिद्ध राजधानी वीतशोकपुर का राजा अशोक अत्यन्त लोभी था वह धान्य का दाँय करते समय बैलों के मुख बंधवा दिया करता था जिससे वे अनाज न खा सकें और रसोइगृह में रसोई करने वाली स्त्रियों के स्तन बंधवा देता था ताकि उनके बच्चे दूध न पी पावे एक समय राजा अशोक के मुख में कोई भयंकर रोग हो

गया उसने उस रोग की औषधि बनवाई वह उसे पीने ही वाला था कि इतने में उसी रोग से पीड़ित एक मुनिराज आहार के लिए इसी ओर आ निकले। राजा ने पथ्य सहित वह औषधि मुनिराज को पिला दी जिससे उनका बारह वर्ष पुराना रोग ठीक हो गया उस पुण्य के फल से आगामी भव में अमलकपुर के राजा नंदीसेन और रानी नन्दमती के धन्य नाम का पुत्र हुआ, समय पाकर उसने राज्य सिंहासन को सुशोभित किया। एक समय धन्य राजा भगवान नेमिनाथ के समवशरण में धर्मोपदेश सुनने के लिए गये थे वहां उन्हें वैराग्य हो गया और वे वहीं दीक्षित हो गये। पूर्वभव में जो बच्चों और पशुओं के भोजन में अन्तराय डाला था उस पापोदय से प्रतिदिन गोचरी को जाते हुए भी उन्हें लगातार नौ माह तक आहार लाभ नहीं हुआ। अंतिम दिन वे सौरीपुर के निकट यमुना के किनारे ध्यानस्थ हो गये। उस दिन वहां का राजा वन में शिकार खेलने आया पर दिन भर में उसे कुछ भी हाथ न लगा। नगर को लौटते हुए राजा की दृष्टि मुनिराज पर पड़ी उन्हें देखते हुए उसका क्रोध उबल पड़ा कि इसने ही आज अपशकुन किया है प्रतिशोध की भावना से राजा ने मुनि के शरीर को तीक्ष्ण बाणों से बेध डाला। सैकड़ों बाणों के एक साथ प्रहार से मुनिराज का शरीर चलनी की सदृश जर्जरित हो गया और सारे शरीर से रक्त धाराएँ फूट पड़ी। मुनिराज ने उपसर्ग प्रारंभ होते ही प्रायोपगमन सन्यास ग्रहण कर लिया और चारों आराधनाओं में संलग्न होते हुए अन्तकृत केवली होकर मोक्ष पधारे।

अभिनंदन आदि पांच सौ मुनिराजों की कथा

दक्षिण भारत में स्थित कुम्भकारकट नगर के राजा का नाम दण्डक, रानी का नाम सुवृता और राजमन्त्री का नाम बालक था। बालक मंत्री जैनधर्म का विरोधी और अभिमानी था। एक समय उस नगर में अभिनन्दन आदि पाँच सौ मुनिराज पधारे। मंत्री बालक उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए जा रहा था मार्ग में उसे खण्डक नाम के मुनिराज मिले और वह उन्हीं से विवाद करने लगा महाराज श्री के स्याद्वाद सिद्धांत के सामने वह एक क्षण भी न टिक सका और लज्जित होता हुआ घर लौट गया

पर उसके हृदय में अपमान की आग धधकने लगी। उसकी शान्ति के लिए उसने एक भांड को मुनि बनाकर रानी सुवृता के महल में भेज दिया और राजा को वहीं लाकर खड़ा कर दिया उस मुनि भेषी भांड की कुत्सित क्रियाएँ देखकर राजा क्रोध से अंधा हो गया और उसने उसी समय आदेश दिया कि नगर में जितने दिगम्बर साधु हों वे सब धानी में पेल दिये जायें मंत्री तो यह चाहता ही था। उसने तत्काल सब मुनिराजों को धानी में पेल दिया। इस महान दुखकर उपसर्ग को प्राप्त होकर भी साधु समूह अपने साम्य भाव से विचलित नहीं हुआ और उत्तमार्थ को प्राप्त किया।

आचार्य वृषभसेन की कथा

दक्षिण दिशा की ओर बसे हुए कुलाल नगर के राजा वैश्रवण बड़े धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे। इनका मंत्री इनसे बिल्कुल उल्टा मिथ्यात्वी और जैन धर्म का बड़ा द्वेषी था सो ठीक ही है चन्दन के वृक्षों के आसपास सर्प रहा ही करते हैं। एक दिन वृषभसेन मुनि अपने संघ को साथ लिए कुलाल नगर की ओर आये वैश्रवण उनके आने का समाचार सुन बड़ी विभूति के साथ भव्यजनों को संग लिये उनकी वन्दना को गये। भक्ति से उसने उनकी प्रदक्षिणा की, स्तुति की, वन्दना की और पवित्र द्रव्यों से पूजा की तथा उनसे जैन धर्म का उपदेश सुना। मंत्री ने मुनियों का अपमान करने की गर्ज से उनसे शास्त्रार्थ किया पर अपमान उसी का हुआ, मुनियों के साथ उसे हार जाना पड़ा इस अपमान की उसके हृदय पर गहरी चोट लगी। इसका बदला चुकाने का विचार कर वह शाम को मुनिसंघ के पास आया और जिस स्थान में वह ठहरा था उसमें उस पापी ने आग लगा दी पर तत्वज्ञानी वस्तु स्थिति को जानने वाले मुनियों ने इस कष्ट की कुछ परवाह न कर बड़ी सहनशीलता के साथ सब कुछ सह लिया और अंत में अपने अपने भावों की पवित्रता के अनुसार उनमें से कितने ही मोक्ष में गये और कितने ही स्वर्ग में।

वृषभसेन मुनि की कथा

पाटलीपुत्र नगरी में वृषभदत्त सेठ सेठानी रहते थे उनके पुत्र का नाम वृषभसेन था वह सर्व गुण और कलाओं में प्रवीण एवं अत्यंत ध र्मात्मा था उसका विवाह अपने मामा की पुत्री धन श्री के साथ हुआ था। किसी दिन दमधर नाम के मुनि के समीप धर्मोपदेश सुनकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण की इससे धन श्री रात दिन दुखी रहने लगी, धन श्री का दुख पिता धन पति से देखा नहीं गया उसने मुनि वृषभसेन को उठाकर घर ले आया और उसे अनेक कपट द्वारा गृहस्थ बना दिया। कुछ दिन बाद अवसर पाकर वृषभसेन पुनः मुनि बन गये। दुष्ट धनपति पुनः हठात् उनको घर पर लाया और क्रोध में साँकल से बाँध दिया। मुनि ने देखा कि यह मुझे पुनः विवश कर रहा है मेरी संयम निधि लूटेगा, उन्होंने श्वासोच्छवास का निरोधकर आराधनापूर्वक सन्यास द्वारा प्राण त्याग किया और स्वर्ग में जाकर वैमानिक महर्द्धिक देव पद प्राप्त किया।

इस प्रकार वृषभसेन मुनिराज ने ऐसी विषम परिस्थिति में भी आत्म कल्याण किया।

यतिवृषभ आचार्य की कथा

श्रावस्ती नगरी का राजा जयसेन था उसके पुत्र का नाम वीरसेन था उस नगरी में शिवगुप्त नाम का बौद्ध भिक्षु था, वह निर्दयी एवं मांस भक्षी तथा कपटी था। राजा जयसेन बौद्ध धर्म पर विश्वास करता था अतः शिवगुप्त को अपना गुरु बनाया एक दिन यतिवृषभ आचार्य संघसहित उस नगरी के बाह्य उद्यान में आये प्रजाजनों को उनके दर्शनार्थ जाते देखकर राजा भी कौतुहल वश उद्यान में गया। वहां पर कल्याणकारी मिष्ट वाणी से आचार्य उपदेश दे रहे थे। उपदेश तात्त्विक एवं तर्कपूर्ण था उसे सुनते ही राजा जैन धर्म का श्रद्धालु हो गया। उस दिन से उसने बुद्ध की उपासना छोड़ दी इससे बौद्ध भिक्षु शिव गुप्त को बड़ा क्रोध आया उसने राजा को बहुत समझाया किंतु वह राजा को जैन धर्म की श्रद्धा को नष्ट नहीं कर सका तब पृथिवीपुरी नाम की नगरी में

बौद्धधर्मी राजा सुमति के पास जाकर जयसेन राजा का जैन होने का समाचार कहा। सुमति राजा ने जयसेन के पास पत्र भेजकर उसको पुनः बौद्ध बनने को कहा किन्तु जयसेन नरेश ने स्वीकार नहीं किया। सुमति का कोप बढ़ता गया उसने गुप्त रूप से जयसेन को मारने का जाल रचा उस दुष्ट ने नौकरों से पूँछा कि कोई ऐसा वीर है जो जयसेन को मार सकता हो तब एक हिमारक नाम के व्यक्ति ने इस कार्य को करना स्वीकार किया। वह दुष्ट हिमारक श्रावस्ती में आकर कपट से उन्हीं यतिवृषभ आचार्य के समीप मुनि बन गया राजा जयसेन दर्शनार्थ प्रतिदिन आया करता था एक दिन अपने नियमानुसार दर्शनार्थ आया। आचार्य के निकट धर्मचर्चा आदि कर के नमस्कार कर जाने लगा कि मुनि वेषधारी उस दुष्ट हिमारक ने राजा को शस्त्र से मार दिया और स्वयं तत्काल भाग गया।

आचार्य इस आकस्मिक घटनाओं को देखकर सोचने लगे। उन्हें राजा की मृत्यु से संघ के ऊपर आने वाली घोर आपत्ति से बचाने का अन्य उपाय नहीं दिखा अतः सामने दिवाल पर यह अनर्थ किसी ने जैन धर्म के द्वेष से किया है इतना लिखा और तत्काल वहां पर पड़े उसी शस्त्र से घातकर सन्यास ग्रहण कर प्राण त्याग किया।

जयसेन राजा के पुत्र वीरसेन को अपने पिता की मृत्यु के समाचार मिले वह उस स्थान पर आकर देखता है तो राजा के निकट आचार्य को भी दिवंगत हुए देखकर आश्चर्यचकित हुआ। इधर उधर देखते हुए उसकी नजर दिवाल पर पड़ी और पूर्वोक्त पंक्ति पढ़ते ही उसे समझ में आया कि यह सब घटना किस प्रकार हुयी है। वीरसेन का हृदय आचार्य यतिवृषभ की भक्ति से भर आया। उसको पहले से जैनधर्म पर श्रद्धा थी अब और अधिक दृढ़ हो गयी। इस प्रकार यतिवृषभ आचार्य ने क्षणमात्र में आराधनापूर्वक समाधि को सिद्ध किया है।

शटकाल मुनि की कथा

पाटलीपुत्र नाम की नगरी में राजानंद राज्य करता था। उसके दो मंत्री थे, एक का नाम शटकाल और दूसरे का नाम वररूचि। शटकाल

जैन सरल स्वभावी नीति प्रिय था इससे विपरीत वररूचि था दोनों का आपस में विरोध था। एक दिन पद्मरूचि नाम के यतिराज से धर्मोपदेश सुनकर शटकाल मंत्री ने जिनदीक्षा ग्रहण की। जैन सिद्धांत का अध्ययन कर उन यतिराज ने संपूर्ण तत्त्वों का समीचीन ज्ञान प्राप्त किया। किसी दिन शटकाल मुनि आहारार्थ राजमहल पधारे आहार करके वापिस लौट रहे थे कि वररूचि ने उन्हें देखा, वररूचि शटकाल से अत्यंत द्वेष रखता था अतः मौका देखा उसने राजानंद से कहा कि देखो यह नग्न ढ़ोगी साधु राजमहल जाकर क्या क्या पाप कर आये हैं इत्यादि। अनेक तरह से राजा को कुपित किया, राजा ने शटकाल मुनि को मार डालने की आज्ञा दी। कर्मचारी मुनि के तरफ आ रहे थे उन्हें शस्त्रास्त्र सहित आवेश में आते देखकर शटकाल मुनि ने निश्चय किया कि ये घोर उपद्रव करने वाले हैं उन्होंने तत्काल चतुराहार का त्याग एवं राग द्वेष कषाय का त्याग कर सन्यास ग्रहण किया और शस्त्र द्वारा प्राण त्यागकर स्वर्गारोहण किया।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

अंजन चोर की कथा

धन्वन्तरि और विश्वलोमा पुण्यकर्म के प्रभाव से अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ नाम के देव हुए और एक दूसरे के धर्म की परीक्षा करने के लिए पृथ्वी लोक पर आये। तदनन्तर उन्होंने यमदग्नि ऋषि को तप से विचलित किया। मगध देश के राजगृह नगर में जिनदत्त नाम का सेठ उपवास का नियम लेकर कृष्णपक्ष चतुर्दशी की रात्रि को श्मशान में कायोत्सर्ग से स्थित था। उसे देखकर अमितप्रभ देव ने विद्युत्प्रभ से कहा कि हमारे मुनि दूर रहे, इस गृहस्थ को ही ध्यान से विचलित करो। तदनन्तर विद्युत्प्रभ देव ने उस पर अनेक प्रकार के उपसर्ग किए, फिर भी वह ध्यान से विचलित नहीं हुआ। तदनन्तर प्रातःकाल अपनी माया को समेटकर विद्युत्प्रभ ने उसकी प्रशंसा की और उसे आकाश गामिनी विद्या दी। विद्या प्रदान करते समय उससे कहा कि तुम्हें यह विद्या सिद्ध हो चुकी है, दूसरे के लिए पंचनमस्कार मंत्र की अर्चना और आराधना की

विधि से सिद्ध होगी। जिनदत्त के यहां सोमदत्त नाम का एक ब्रह्मचारी वटु रहता था, जो जिनदत्त के लिए फूल लाकर देता था। एक दिन उसने जिनदत्त सेठ से पूँछा कि आप प्रातःकाल ही उठकर कहाँ जाते हैं ? सेठ ने कहा कि मैं अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना भक्ति करने के लिए जाता हूँ। मुझे इस प्रकार से आकाशगामिनी विद्या का लाभ हुआ है। सेठ के ऐसा कहने पर सोमदत्त वटु ने कहा कि मुझे भी यह विद्या दे ओ, जिससे मैं भी तुम्हारे साथ पुष्पादिक लेकर वन्दना भक्ति करूँगा। तदनन्तर सेठ ने उसके लिए विद्या सिद्ध करने की विधि बतलाई।

सोमदत्त वटु ने कृष्णपक्ष की चर्तुदशी की रात्रि को श्मशान में वटवृक्ष की पूर्व दिशा वाली शाखा पर एक सौ आठ रस्सियों का एक मूंजका सींका बांधा, उसके नीचे सब प्रकार के पैने शस्त्र ऊपर की ओर मुख कर स्थापित किये। पश्चात् गंध पुष्प आदि लेकर सींके के बीच प्रविष्ट हो उसने बोला - दो दिन के उपवास का नियम लिया। फिर नमस्कार मंत्र का उच्चारण कर छुरी से सींके की एक-एक रस्सी को काटने के लिए तैयार हुआ। परन्तु नीचे चमकते हुए शास्त्रों के समूह को देखकर वह डर गया तथा विचार करने लगा कि यदि सेठ के वचन असत्य हुए तो मरण हो जावेगा। इस प्रकार शंकित चित्र होकर वह सींके पर बार-बार चढ़ने और उतरने लगा।

उसी समय राजगृही नगरी में एक अंजन चोर और सुन्दरी नाम की वेश्या रहती थी एक दिन उस वेश्या ने कनकप्रभ राजा की कनका रानी का हार देखा। रात्रि को जब अंजन चोर वेश्या के यहाँ गया, तब उसने कहा- कि यदि तुम मुझे कनका रानी का हार दे सकते हो तो मेरे भर्त्ता बन सकते हो अन्यथा नहीं। तदनन्तर अंजन चोर रात्रि में हार चुराकर आ रहा था कि हार के प्रकाश से वह जान लिया गया। अंगरक्षकों और कोटपाल ने उसे पकड़ना चाहा परन्तु वह हार छोड़कर भाग गया। वट वृक्ष के नीचे सोमदत्त वटुक को देखकर उसने उससे सब समाचार पूँछा तथा उससे मंत्र लेकर वह सींके पर चढ़ गया। उसने निःशंकित होकर उस विधि से एक ही बार में सींके की सब रस्सियाँ काट

दी। ज्यों ही वह शस्त्रों के ऊपर गिरने लगा त्यों ही विद्या सिद्ध हो गयी। सिद्ध हुयी विद्या ने उससे कहा कि मुझे आज्ञा दो। अंजनचोर ने कहा- कि मुझे जिनदत्त सेठ के पास ले चलो। उस समय जिनदत्त सेठ सुदर्शन मेरु के चैत्यालयों में स्थित था। विद्या ने अंजनचोर को ले जाकर सेठ के आगे खड़ा कर दिया। अपना पिछला वृतान्त कह कर अंचन चोर ने सेठ से कहा कि आपके उपदेश से मुझे जिस प्रकार यह विद्या सिद्ध हुयी है उसी प्रकार परलोक की सिद्धि के लिए भी मुझे आप उपदेश दीजिए। तदनन्तर चारण ऋद्धिधारी मुनिराज के पास दीक्षा लेकर उसने कैलाश पर्वत पर तप किया और केवलज्ञान प्राप्त कर वहीं से मोक्ष प्राप्त किया।

अनन्तमति की कथा

अंग देश की चंपानगरी में राजा वसुवर्धन रहते हैं। उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमति था। प्रियदत्त नाम का सेठ था, उसकी स्त्री का नाम अंगवती था और दोनों के अनन्तमती नाम की पुत्री थी। एक बार नन्दीश्वर अष्टाह्निका पर्व की अष्टमी के दिन सेठ ने धर्मकीर्ति आचार्य के पादमूल में आठ दिन तक का ब्रह्मचर्य व्रत लिया। सेठ ने क्रीड़ावश अनन्तमति को भी ब्रह्मचर्य व्रत लिवा दिया।

अन्य समय जब अनन्तमति के विवाह का अवसर आया तब उसने कहा हे पिताजी! आपने तो मुझे ब्रह्मचर्य दिलाया था, इसलिये विवाह का क्या प्रयोजन है? सेठ ने कहा - मैंने तो तुझे क्रीड़ावश ब्रह्मचर्य दिलाया था। अनन्तमति ने कहा - कि व्रतरूप धर्म के विषय में क्रीड़ा क्या वस्तु है ? सेठ ने कहा - पुत्री। नन्दीश्वर पर्व के आठ दिन के लिये ही तुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, न कि सदा के लिये। अनन्तमति ने कहा कि पिताजी। भट्टारक महाराज ने तो वैसा नहीं कहा था। इस जन्म में मेरा विवाह त्याग है। ऐसा कहकर वह समस्त कलाओं के विज्ञान की शिक्षा लेती हुई रहने लगी।

एक बार जब वह पूर्ण यौवनवती हो गयी तब चैत्र मास में अपने घर के उद्यान में झूला झूल रही थी। उसी समय विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित किन्नरपुर नगर में रहनेवाला कुण्डलमण्डित

नामक विद्याधरों का राजा अपने सुकेशी नामक स्त्री के साथ आकाश में जा रहा था। उसने उस अनन्तमति को देखा। देखते ही वह विचार करने लगा कि इसके बिना जीवित रहने से क्या प्रयोजन है ? ऐसा विचारकर वह अपनी स्त्री को घर छोड़ आया और शीघ्र ही आकर विलाप करती हुयी अनन्तमति को घर ले गया। जब वह आकाश में जा रहा था तब उसने अपनी स्त्री सुकेशी को वापिस आती देखा। देखते ही वह भयभीत हो गया और उसने पर्णलघु विद्या देकर अनन्तमति को महाअटवी में छोड़ दिया। वहाँ उसे रोती देख भीम नामक भीलों का राजा अपनी बस्ती में ले गया और मैं तुम्हें प्रधान रानी का पद देता हूँ तुम मुझे चाहो ऐसा कहकर रात्रि के समय उसके न चाहने पर भी उपभोग करने के लिए उद्यत हुआ। व्रत के माहात्म्य से बन देवता ने उस भीलों के राजा की अच्छी पिटाई की। यह कोई देवी है, ऐसा समझकर भीलों का राजा डर गया और उसने वह अनन्तमती बहुत से बनिजारों के साथ ठहरे हुए पुष्पक नामक प्रमुख बनिजारे के लिए दे दी। प्रमुख बनिजारे ने लोभ दिखाकर विवाह करने का मन किया, परन्तु अनन्तमती ने उसे स्वीकृत नहीं किया। तदनन्तर वह बनिजारा उसे लाकर अयोध्या की कामसेना नाम की वेश्या को सौंप गया। कामसेना ने उसे वेश्या बनाना चाहा, पर वह किसी भी तरह वेश्या नहीं हुयी। तदनन्तर उस वेश्या ने सिंहराज नामक राजा के लिये अनन्तमती दिखलाई और वह राजा रात्रि में उसे बलपूर्वक सेवन करने के लिए उद्यत हुआ, परन्तु उसके व्रत के माहात्म्य से नगर देवता ने राजा के ऊपर उपसर्ग किया, जिससे डरकर उसने उसे घर से निकाल दिया।

खेद के कारण अनन्तमती रोती हुई बैठी थी कि कमलश्री नाम की आर्यिका ने 'यह श्राविका है' ऐसा मानकर बड़े सम्मान के साथ उसे अपने पास रख लिया। तदनन्तर अनन्तमती का शोक भुलाने के लिये प्रियदत्त सेठ बहुत से लोगों के साथ वन्दना भक्ति करता हुआ अयोध्या गया, और अपने साले जिनदत्त सेठ के घर संध्या के समय पहुँचा। वहाँ उसने रात्रि के समय पुत्री के हरण का समाचार कहा। प्रातःकाल होने पर सेठ प्रियदत्त तो वन्दना भक्ति करने के लिये गये। इधर जिनदत्त सेठ

की स्त्री ने अत्यन्त गौरवशाली पाहुने के निमित्त उत्तम भोजन बनाने और घर में चौक पूरे करने के लिये कमल श्री आर्यिका की श्राविका को बुलवा लिया। यह श्राविका सब काम करके अपने बसतिका में चली गई। वन्दना भक्ति करके जब प्रियदत्त सेठ वापिस आये ब चौक देखकर उन्हें अनन्तमती का स्मरण हो आया, उनके हृदय पर गहरी चोट लगी। गद्गद् वचनों से अश्रुपात करते हुए उन्होंने कहा कि जिसने यह चौक पूरा है उसे मुझे दिखलाओ। तदनन्तर वह श्राविका बुलाई गई। पिता और पुत्री का मेल होने पर जिनदत्त सेठ ने बहुत भारी उत्सव किया। अनन्तमती ने कहा- कि पिताजी अब मुझे तप दिला दो, मैंने एक ही भव में संसार की विचित्रता देख ली है। तदनन्तर कमलश्री आर्यिका के पास दीक्षा लेकर उसने बहुत काल तप किया। अन्त में सन्यास पूर्वक मरण कर उसकी आत्मा सहस्रार स्वर्ग में देव हुई।

उद्दायन राजा की कथा

एक बार अपनी सभा में सम्यग्दर्शन के गुणों का वर्णन करते हुए, सौधर्मेन्द्र ने वत्स देश के रौरकपुर नगर के राजा उद्दायन महाराज के निर्विचिकित्सक गुण की बहुत प्रशंसा की। उसकी परीक्षा करने के लिए एक वासव नाम का देव आया। उसने विक्रिया से एक ऐसे मुनि का रूप बनाया जिसका शरीर उदुम्बर कुष्ठ से गठित हो रहा था। उस मुनि ने विधिपूर्वक खड़े होकर उसी राजा उद्दायन के हाथ से दिया हुआ समस्त आहार और जल माया से ग्रहण किया। पश्चात् अत्यन्त दुर्गन्धित वमन कर दिया। दुर्गन्ध के भय से परिवार के सब लोग भाग गये, परन्तु राजा उद्दायन अपनी रानी प्रभावती के साथ मुनि की परिचर्या करता रहा। मुनि ने उन दोनों के ऊपर बमन कर दिया। हाय-हाय मेरे द्वारा अपनी निन्दा करते हुए राजा ने मुनि का प्रक्षालय किया। अन्त में देव अपनी माया को समेटकर असली रूप में प्रकट हुआ और पहले का सब समाचार कहकर तथा राजा की प्रशंसा कर स्वर्ग चला गया। उद्दायन महाराज वर्धमान स्वामी के पादमूल में तप ग्रहण कर मोक्ष गये और रानी प्रभावती तप के प्रभाव से ब्रह्मस्वर्ग में देव हुई।

रेवती रानी की कथा

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी सम्बन्धी मेघकूट नगर का राजा चन्द्रप्रभ, अपने चन्द्रशेखर पुत्र के लिये राज्य देकर, परोपकार तथा वन्दना-भक्ति के लिये कुछ विद्याओं को धारण करता हुआ दक्षिण मथुरा गया और वहाँ गुप्ताचार्य के समीप क्षुल्लक हो गया। एक समय वह क्षुल्लक, वन्दना-भक्ति के लिये उत्तर मथुरा की ओर जाने लगा। जाते समय उसने गुप्ताचार्य से पूँछा- कि क्या किसी से कुछ कहना है। गुप्ताचार्य ने कहा- कि सुब्रत मुनि को वन्दना और वरुणराज की महारानी रेवती के लिये आशीर्वाद कहने के योग्य है। क्षुल्लक ने कहा कि वहाँ ग्यारह अंग के धारक भव्यसेनाचार्य तथा अन्य धर्मात्मा लोग भी रहते हैं? उनका आप नाम भी नहीं लेते हैं। उसमें कुछ कारण अवश्य होगा ऐसा विचार कर क्षुल्लक उत्तर मथुरा गया। वहीं जाकर उसने सुव्रत मुनि के लिये भट्टारक की वन्दना कही। सुव्रत मुनि ने परम वात्सल्य भाव दिखलाया। उसे देखकर वह भव्यसेन की वसतिका में गया। क्षुल्लक के वहाँ पहुँचने पर भव्यसेन ने उससे संभाषण भी नहीं किया। भव्यसेन शौच के लिये बाहर जा रहे थे सो क्षुल्लक उनका कमण्डलु लेकर उनके साथ बाह्य भूमि में गया और विक्रिया से उसने आगे ऐसा मार्ग दिखाया जो कि हरे-हरे कोमल तृणों के अंकुरों से अच्छादित था। उस मार्ग को देख कर क्षुल्लक ने कहा भी कि आगम में ये सब जीव कहे गये हैं। भव्यसेन आगम पर अरुचि अश्रद्धा दिखाते हुए तृणों पर चलते गये। क्षुल्लक ने विक्रिया से कमण्डलु का पानी सुखा दिया। जब शुद्धि का समय आया तब कमण्डलु में पानी नहीं था तथा यहाँ कोई विक्रिया भी नहीं दिखाई देती है। यह देख वे आश्चर्य में पड़ गये। तदनन्तर उन्होंने स्वच्छ सरोवर में उत्तम मिट्टी से शुद्धि की। इन सब क्रियाओं से उन्हें मिथ्या दृष्टि जानकर क्षुल्लक ने भव्यसेन का नाम अभव्यसेन नाम रख दिया।

तदनन्तर दूसरे दिन पूर्व दिशा में पद्मासन पर स्थित, चार मुखों से सहित, यज्ञोपवीत आदि से युक्त तथा देव और दानवों से वन्दित ब्रह्मा का रूप दिखाया। राजा तथा भव्यसेन आदि लोग वहाँ गये परन्तु

रेवती रानी लोगों से प्रेरित होने पर भी नहीं गई। वह यही कहती रही कि यह ब्रह्मा नाम का देव कौन है ? इसी प्रकार दक्षिण दिशा में गरुड के ऊपर आरूढ़ चार भुजाओं से सहित तथा गदा शंख आदि के धारक नारायण का रूप दिखाया। पश्चिम दिशा में बैल पर आरूढ़ तथा अर्धचन्द्र, जटाजूट, पार्वती और गुणों से सहित शंकर का रूप दिखाया। उत्तर दिशा में समवशरण के मध्य में आठ प्रतिहार्यों से सहित, सुर, नर विद्याधर और मुनियों के समूह से बन्धमान, पर्यकासन से स्थित तीर्थंकर देव का रूप दिखाया। वहाँ सब लोग गये, परन्तु रेबती रानी लोगों के द्वारा प्रेरणा की जाने पर भी नहीं गयी। वह यही कहती रही कि नारायण नौ ही होते हैं। रुद्र, ग्यारह ही होते हैं और तीर्थंकर चौबीस होते है ऐसा जिनागम में कहा गया है और वे सब हो चुके हैं यह तो कोई मायावी है।

दूसरे दिन चर्या के समय उसने एक ऐसे क्षुल्लक का रूप बनाया था। वह रेवती रानी के घर के समीपवर्ती मार्ग में मायामयी मूर्च्छा से पड़ रहा। रेवती रानी ने जब यह समाचार सुना तब वह भक्तिपूर्वक उठाकर ले गयी, उसका उपचार किया और पथ्य कराने के लिए उद्यत हुयी। उस क्षुल्लक ने सब आहार कर दुर्गन्ध से युक्त बमन कर दिया। रानी ने बमन को दूर कर कहा कि हाय मैंने प्रकृति के विरुद्ध अपथ्य आहार दिया। रेबती रानी के उक्त वचन सुनकर क्षुल्लक ने संतोष से सब माया को संकोच कर उसे गुप्ताचार्य की परोक्ष वन्दना करा कर उनका आशीर्वाद कहा और लोगों के बीच उसकी अमूढ़दृष्टिता की खूब प्रशंसा की। यह सब कर क्षुल्लक अपने स्थान पर चला गया। राजा वरुण शिवकीर्ति पुत्र के लिये राज्य देकर तथा तप ग्रहण कर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ तथा रेबती रानी भी तपकर ब्रह्म स्वर्ग में देव हुयी।

जिनेन्द्र भक्त सेठ की कथा

सौराष्ट्र देश के पाटलिपुत्र नगर में राजा यशोधर रहता था। उसकी रानी का नाम सुसीमा था। उन दोनों के सुबीर नाम का पुत्र था। सुवीर सप्त व्यसनों से अभिभूत था तथा ऐसे ही चोर पुरुष उसकी सेवा

करते थे। उसने कानों कान सुना कि पूर्व गौड़ देश की ताम्रलिप्त नगरी में जिनेन्द्रभक्त सेठ के सतखण्डा महल के ऊपर अनेक रक्षकों से सहित श्री पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा के ऊपर जो छत्रत्रय लगा है उस पर एक विशेष प्रकार का अमूल्य बैडूर्यमणि संलग्न है। लोभवश उस सुवीर ने अपने पुरुषों से पूँछा कि क्या कोई उस मणि को लाने के लिए समर्थ है? सूर्य नामक चोर ने गला फाड़ कर कहा कि यह तो क्या है मैं इन्द्र के मुकुट का मणि भी ला सकता हूँ। इतना कहकर वह कपट से क्षुल्लक वन गया और अत्यधिक कायक्लेश से ग्राम तथा नगरों में क्षोभ करता हुआ क्रम से ताम्रलिप्त नगरी पहुँच गया। प्रशंसा से क्षोभ को प्राप्त हुए जिनेन्द्रभक्त सेठ ने जब सुना तब वह जाकर दर्शन कर, वन्दना कर तथा वार्तालाप कर उस क्षुल्लक को अपने घर ले आया। उसने पार्श्वनाथ देव के दर्शन कराये और माया से न चाहते हुए भी उसे मणिका रक्षक बनाकर वहीं रख लिया।

एक दिन क्षुल्लक से पूँछकर सेठ समुद्र यात्रा के लिये चला और नगर से बाहर निकलकर ठहर गया। वह चोर क्षुल्लक घर के लोगों को सामान ले जाने में व्यग्र जानकर आधी रात के समय उस मणि को लेकर चलता बना। मणि के तेज से मार्ग में कोतवालों ने उसे रोक लिया और पकड़ने के लिए उसका पीछा किया। कोतवालों से बचकर भागने में असमर्थ हुआ वह चोर क्षुल्लक सेठ की ही शरण में जाकर कहने लगा कि मेरी रक्षा करो रक्षा करो। कोतवालों का कल-कल शब्द सुनकर तथा पूर्वा पर विचार कर सेठ ने जान लिया कि यह चोर है। परन्तु धर्म का उपहास बचाने के लिए उसने कहा कि यह मेरे कहने से ही रत्न लाया है आप लोगों ने अच्छा नहीं किया जो इस महातपस्वी को चोर घोषित किया। तदनन्तर सेठ के वचन को प्रमाण मान कर कोतवाल चले गये और सेठ ने उसे रात्रि के समय निकाल दिया इसी प्रकार अन्य सम्यग्दृष्टि को भी असमर्थ और अज्ञानी जनों से आये हुए धर्म के दोष का आच्छादन करना चाहिये।

वारिषेण की कथा

मगध देश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक रहता था। उसकी रानी का नाम चेलिना था। उन दोनों के बारिषेण नाम का पुत्र हुआ था वारिषेण उत्तम श्रावक था। एक बार वह उपवास धारणकर चर्तुदशी की रात्रि में श्मसान में कायोत्सर्ग में खड़ा था। उसी दिन बगीचे में गई हुई मगध सुन्दरी नामक वेश्या ने श्री कीर्ति सेठानी के द्वारा पहिना हुआ हार देखा। तदनन्तर उस हार को देखकर 'इस आभूषण के बिना मुझे जीवन से क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह शय्या पर पड़ रही। उस वेश्या में आसक्त विद्युच्चर चोर जब रात्रि के समय उसके घर आया तब उसे शय्या पर पड़ी देख बोला कि प्रिये! इस तरह क्यों पड़ी हो ? वेश्या ने कहा कि यदि श्री कीर्ति सेठानी का हार मुझे देते हो ते मैं जीवित रहूँगी और तुम मेरे पति होओगे अन्यथा नहीं। वेश्या के यह वचन सुनकर तथा उसे आश्वासन देकर विद्युच्चर चोर आधी रात के समय श्री कीर्ति सेठानी के घर गया और अपनी चतुराई से हार चुराकर बाहर निकल गया। हार के प्रकाश से 'यह चोर है' ऐसा जानकर गृह के रक्षकों तथा कोतवालों ने उसे पकड़ना चाहा। जब वह चोर भागने में असमर्थ हो गया तब बारिषेण कुमार के आगे उस हार को डालकर छिपकर बैठ गया। कोतवालों ने उस हार को बारिषेण के आगे पड़ा देखकर राजा श्रेणिक से कह दिया कि राजन्। बारिषेण चोर है। यह सुनकर राजा ने कहा कि इस मूर्ख का मस्तक छेदकर लाओ। चाण्डाल ने बारिषेण का मस्तक काटने के लिये जो तलवार चलाई वह उसके गले में फूलों की माला बन गयी। उस अतिशय को सुनकर राजा श्रेणिक ने जाकर बारिषेण से क्षमा कराई। विद्युच्चर चोर ने अभयदान पाकर राजा से जब अपना सब वृत्तान्त कहा तब वह बारिषेण को घर ले जाने के लिये उद्यत हुआ। परन्तु बारिषेण ने कहा कि अब तो मैं पाणिपात्र में भोजन करूँगा अर्थात् दिगम्बर मुनि बनूँगा। तदनन्तर वह सूरसेन गुरु के समीप मुनि हो गया।

एक समय वह मुनि राजगृह के समीपवर्ती पलासकूट ग्राम में चर्या के लिये प्रविष्ट हुए। वहाँ राजा श्रेणिक के अग्निभूति मंत्री के पुत्र

पुष्पडाल ने उन्हें पड़गाहा। चर्या कराने के बाद वह अपनी सोमिल्ला नामक स्त्री से पूछकर स्वामी का पुत्र तथा बाल्यकाल का मित्र होने के कारण कुछ दूर तक भेजने के लिये बारिषेण के साथ चला गया। अपने लौटने के अभिप्राय से वह क्षीरवृक्ष आदि को दिखाता तथा बार-बार मुनि को वन्दना करता था। परन्तु मुनि हाथ पकड़कर उसे साथ ले गये और धर्म का इष्ट उपदेश सुनाकर तथा वैराग्य उपजाकर उन्होंने उसे तप ग्रहण करा दिया। तप धारण करने पर भी वह सोमिल्ला स्त्री को नहीं भूलता था।

पुष्पडाल और बारिषेण दोनों ही मुनि बारह वर्ष तक तीर्थयात्रा कर भगवान वर्धमान स्वामी के समवशरण में पहुँचे। वहाँ वर्धमान स्वामी और पृथ्वी से सम्बन्ध रखने वाला एक गीत देवों के द्वारा गाया जा रहा था उसे पुष्पडाल ने सुना। गीत का भाव यह था कि जब पति प्रवास को जाता है तब स्त्री खिन्न चित्त होकर मैली कुचैली रहती है परन्तु जब वह घर छोड़कर ही चल देता है तब वह कैसे जीवित रह सकती है।

पुष्पडाल ने यह गीत अपने तथा सोमिल्ला के सम्बन्ध में लगा लिया इसलिये वह उत्कण्ठित होकर चलने लगा। बारिषेण मुनि यह जानकर उसका स्थितीकरण करने के लिये उसे अपने नगर ले गये। चेलना रानी ने उन दोनों मुनियों को देखकर विचार किया कि बारिषेण क्या चारित्र से विचलित होकर आ रहा है ? परीक्षा करने के लिये उसने दो आसन दिये - एक सराग और दूसरा वीतराग। बारिषेण ने वीतराग आसन पर बैठकर कहा कि हमारा अन्तःपुर बुलाया जावे। महारानी चेलना ने आभूषणों से सजी हुयी उसकी बत्तीस स्त्रियाँ बुलाकर खड़ी कर दीं। तदनन्तर बारिषेण ने पुष्पडाल से कहा कि ये स्त्रियाँ और मेरा युवराज पद तुम ग्रहण करो। यह सुनकर पुष्पडाल अत्यन्त लज्जित होता हुआ उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त हुआ परमार्थ से तप करने लगा।

विष्णुकुमार मुनि की कथा

अवन्ति देश की उज्जयिनी नगरी में श्रीवर्मा राजा राज्य करता था। उसके बलि, बृहस्पति, प्रहलाद और नमुचि ये चार मन्त्री थे। वहाँ

एक समय शास्त्रों के आधार, दिव्यज्ञानी तथा सात सौ मुनियों से सहित अकम्पनाचार्य आकर उद्यान में ठहर गये। अकम्पनाचार्य ने समस्त संघ को मनाकर दिया कि राजादिक के आने पर किसी के साथ वार्तालाप न किया जावे, अन्यथा समस्त संघ का नाश हो जावेगा।

राजा अपने धवलगृह पर बैठा था, वहाँ से उसने पूजा की सामग्री हाथ में लेकर जाते हुए नागरिकों को देखकर मन्त्रियों से पूछा कि ये लोग कहाँ जा रहे है, यह यात्रा का समय तो है नहीं। मन्त्रियों ने कहा कि नगर के बाहर उद्यान में बहुत से नग्न साधु आये है, वही ये लोग जा रहे है। राजा ने कहा कि हम भी उन्हें देखने के लिये चलते हैं। ऐसा कह कर राजा मन्त्रियों सहित वहाँ गया। एक-एक कर समस्त की वन्दना राजा ने की, परन्तु किसी ने भी आशीर्वाद नहीं दिया। दिव्य अनुष्ठान के कारण ये साधु अत्यन्त निःस्पृह हैं ऐसा विचार कर जब राजा लौटा तो खोटा अभिप्राय रखने वाले मन्त्रियों ने यह कह कर उन मुनियों का उपहास किया कि ये बैल है, कुछ भी नहीं जानते हैं, मूर्ख हैं, इसीलिये छल से मौन लेकर बैठे हैं। ऐसा कहते हुए मन्त्री राजा के साथ जा रहे थे कि उन्होंने आगे चर्या कर आते हुए श्रुतसागर मुनि को देखा। देखकर कहा कि 'यह तरुण बैल पेट भर कर आ रहा है। यह सुनकर उन मुनि ने राजा के मन्त्रियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें हरा दिया। वापिस आकर मुनि ने यह सब समाचार अकम्पनाचार्य से कहा। अकम्पनाचार्य ने कहा कि तुमने समस्त संघ को मरवा दिया। यदि शास्त्रार्थ के स्थान पर जाकर तुम रात्रि को अकेले खड़े रहते हो, तो संघ जीवित रह सकता है और तुम्हारे अपराध की शुद्धि हो सकती है। तदनन्तर श्रुतसागर मुनि वहाँ जाकर कायोत्सर्ग से स्थित हो गये।

अत्यन्त लज्जित होकर क्रोध से भरे हुए मंत्री रात्रि में समस्त संघ को मारने के लिए जा रहे थे कि उन्होंने कायोत्सर्ग से खड़े हुए उन मुनि को देखकर विचार किया कि जिसने हम लोगों का पराभव किया है वही मारने के योग्य है। ऐसा विचार कर चारों मंत्रियों ने मुनि को मारने के लिए एक साथ खङ्ग ऊपर उठाये परन्तु जिसका आसन कम्पित

हुआ था ऐसे नगर देवता ने आकर उन सबको उसी अवस्था में कील दिया। प्रातःकाल सब लोगों ने उन मन्त्रियों को उसी प्रकार कीलित देखा। मन्त्रियों की इस कुचेष्टा से राजा बहुत क्रुद्ध हुआ, परन्तु ये मंत्री वंश परम्परा से चले आ रहे हैं, यह विचार कर उन्हें मारा तो नहीं सिर्फ गर्दभारोहण आदि करा कर निकाल दिया।

तदनन्तर कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में राजा महापद्म राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम लक्ष्मीपति था, उनके दो पुत्र थे - पद्म और विष्णु। एक समय राजा महापद्म, पद्मनामक पुत्र को राज्य देकर विष्णु नामक पुत्र के साथ श्रुतसागरचन्द्र नामक आचार्य के पास मुनि हो गये। ये बलि आदिक, आकर पद्मराजा के मंत्री बन गये। उसी समय कुम्भपुर के दुर्ग में राजा सिंहबल रहता था। वह अपने दुर्ग के बल में राजा पद्म के देश में उपद्रव करता था। राजा पद्म उसे पकड़ने की चिन्ता में दुर्बल होता जाता था। उसे दुर्बल देख एक दिन बलि ने कहा कि देव। दुर्बलता का क्या कारण है ? राजा ने उसे दुर्बलता का कारण बताया। उसे सुनकर तथा आज्ञा प्राप्त कर बलि वहाँ गया और अपनी बुद्धि के माहात्म्य से दुर्ग को तोड़कर तथा सिंहबल को लेकर वापिस आ गया। उसने राजा पद्म को यह कहकर सिंहबल को सौंप दिया कि यह वही सिंहबल है। राजा पद्म ने संतुष्ट होकर कहा कि तुम अपना वांछित वर माँगो। बलि ने कहा कि जब माँगूगा तब दिया जावे।

तदनन्तर कुछ दिनों में विहार करते हुए वे अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनि उसी हस्तिनापुर में आये। उनके आते ही नगर में हलचल मच गयी। बलि आदि मन्त्रियों ने उन्हें पहिचान कर विचार किया कि राजा इनका भक्त है। इस भय से उन्होंने उन मुनियों को मारने के लिए राजा पद्म से अपना पहले का वर माँगा कि हम लोगों को सात दिन का राज्य दिया जावे। तदनन्तर राजा पद्म उन्हें सात दिन का राज्य देकर अन्तःपुर में चला गया। इधर बलि ने आतापनगिरि पर कायोत्सर्ग से खड़े हुए मुनियों को बाड़ी से वेष्टित कर मण्डप लगा यज्ञ करना शुरू किया। जूठे सकौरे, बकरा आदि जीवों के कलेवर तथा धूम आदि के द्वारा मुनियों

को मारने के लिये बहुत भारी उपसर्ग किया। मुनि दोनों प्रकार का सन्यास लेकर स्थिर हो गये।

तदनन्तर मिथिलानगरी में आधी रात के समय बाहर निकले हुए श्रुतसागर चन्द्र आचार्य ने आकाश में काँपते हुए श्रवण नक्षत्र को देखकर अवधिज्ञान से जानकर कि महामुनियों के ऊपर महान उपसर्ग हो रहा है। यह सुनकर पुष्पधर नामक विद्याधर क्षुल्लक ने पूँछा कि कहाँ किन पर महान् उपसर्ग हो रहा है ? उन्होंने कहा कि हस्तिनागपुर में अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों पर। उपसर्ग कैसे नष्ट हो सकता है ऐसा क्षुल्लक द्वारा पूँछे जाने पर कहा कि धरणिभूषण पर्वत पर विक्रिया ऋद्धि के धारक विष्णुकुमार मुनि स्थित हैं, वे उपसर्ग को नष्ट कर सकते हैं। यह सुन क्षुल्लक ने उनके पास जाकर सब समाचार कहा। मुझे विक्रियाऋद्धि है क्या ? ऐसा विचार कर विष्णु कुमार मुनि ने अपना हाथ पसारा तो वह पर्वत को भेद कर दूर तक चला गया। तदनन्तर विक्रिया का निर्णय कर उन्होंने हस्तिनागपुर जाकर राजा पद्म से कहा कि तुमने मुनियों पर उपसर्ग क्यों कराया ? आपके कुल में ऐसा कार्य किसी ने नहीं किया। राजा पद्म ने कहा कि क्या करूँ मैंने पहले इसे वर दे दिया था।

तदनन्तर विष्णुकुमार मुनि ने एक बौने ब्राह्मण का रूप बनाकर उत्तम शब्दों द्वारा वेदपाठ करना शुरू किया। बलि ने कहा कि तुम्हें क्या दिया जावे ? बौने ब्राह्मण ने कहा कि तीन डग भूमि देओ। 'पगले ब्राह्मण'। देने को बहुत है और कुछ माँग इस प्रकार बार-बार लोगों के कहे जाने पर भी वह तीन डग भूमि ही माँगता रहा। तदनन्तर हाथ में संकल्प का जल लेकर जब उसे विधिपूर्वक तीन डग भूमि दे दी गई तब उसने एक पैर मेरु पर रक्खा, दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर रक्खा और तीसरे पैर के द्वारा देवविमानों आदि में क्षोभ उत्पन्न कर उसे बलि की पीठ पर रक्खा तथा बलि को बाँधकर मुनियों का उपसर्ग दूर किया। तदनन्तर वे चारों मन्त्री राजा पद्म के भय में आकर विष्णुकुमार मुनि तथा अकम्पनाचार्य आदि मुनियों के चरणों में संलग्न हुए - चरणों में गिर कर क्षमा माँगने लगे। वे मन्त्री श्रावक बन गये।

वज्रकुमार मुनि की कथा

हस्तिनागपुर में बल नामक राजा रहता था। उसके पुरोहित का नाम गरूड़ था। गरूड़ के एक सोमदत्त नाम का पुत्र था। उसने समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर अहिच्छत्रपुर में रहने वाले अपने मामा सुभूति के पास जाकर कहा कि मामा जी। मुझे दुर्मुख राजा के दर्शन करा दो। परन्तु गर्व से भरे हुए सुभूति ने उसे राजा के दर्शन नहीं कराये। तदनन्तर हठधर्मी होकर वह स्वयं ही राजसभा में चला गया। वहाँ उसने राजा के दर्शनकर आर्शीवाद दिया और समस्त शास्त्रों की निपुणता को प्रकटकर मन्त्रिपद प्राप्त कर लिया। उसे वैसा देख सुभूति मामा ने अपनी यज्ञदत्ता नाम की पुत्री विवाह ने के लिये दे दी।

एक समय वह यज्ञदत्ता जब गर्भिणी हुई तब उसे वर्षाकाल में आम्रफल खाने का दोहला हुआ। तदनन्तर बाग-बगीचों में आम्रफलों को खोजते हुए सोमदत्त ने देखा कि जिस आम्रवृक्ष के नीचे सुमित्राचार्य ने योग ग्रहण किया है वह वृक्ष नाना फलों से फला हुआ है। उसने उस वृक्ष से फल लेकर आदमी के हाथ घर भेज दिये और स्वयं धर्म श्रवण कर संसार से विरक्त हो गया तथा तप धारण कर आगम का अध्ययन करने लगा। जब वह अध्ययन कर परिपक्व हो गया तब नाभि गिरि पर्वत पर आतापन योग से स्थित हो गया।

इधर यज्ञदत्ता ने पुत्र को जन्म दिया। पति के मुनि होने का समाचार सुनकर वह अपने भाई के पास चली गई। पुत्र की शुद्धि को जानकर वह अपने भाईयों के साथ नाभिगिरि पर्वत पर गई। वहाँ आतापन योग में स्थित सोमदत्त मुनि को देखकर अत्यधिक क्रोध के कारण उसने वह बालक उनके पैरों के ऊपर रख दिया और गालियाँ देकर स्वयं घर चली गयी।

उसी समय अमरावती नगरी का रहने वाला दिवाकर देव नाम का विद्याधर जो कि अपने पुरन्दर नामक छोटे भाई के द्वारा राज्य से निकाल दिया गया था, अपनी स्त्री के साथ मुनि की वन्दना करने के

लिये आया था। वह उस बालक को लेकर, अपनी स्त्री को सौंपकर तथा उसका वज्रकुमार नाम रख कर चला गया। वह वज्रकुमार कनक नगर में विमल वाहन नामक अपने मामा के समीप समस्त विद्याओं में पारगामी होकर क्रम-क्रम से तरुण हो गया।

तदनन्तर गरूड़वेग और अंगवती की पुत्री पवनवेगा हेमन्त पर्वत पर बड़े श्रम से प्रज्ञप्ति नाम की विद्या सिद्ध कर रही थी। उसी समय वायु से कम्पित बेरी का एक पैना कांटा उसकी आंख में जा लगा।उसकी पीड़ा से चित चंचल हो जाने से विद्या उसे सिद्ध नहीं हो रही थी। तदनन्तर वज्रकुमार ने उसे वैसा देख कुशलतापूर्वक वह कांटा निकाल दिया। कांटा निकल जाने से उसका चित्त स्थिर हो गया तथा विद्या सिद्ध हो गई। विद्या सिद्ध होने पर उसने कहा कि आप के प्रसाद से यह विद्या सिद्ध हुई है इसलिये आप ही मेरे भर्त्ता हैं। ऐसा कहकर उसने वज्रकुमार को विवाह लिया।

एक दिन वज्रकुमार ने दिवाकरदेव विद्याधर से कहा कि तात! मैं किसका पुत्र हूँ। सत्य कहिये, उसके कहने पर भी मेरी भोजनादि में प्रवृत्ति होगी। तदनन्तर दिवाकरदेव ने पहले का सब वृत्तान्त सच सच कह दिया। उसे सुनकर वह अपने पिता के दर्शन करने के लिए भाईयों के साथ मथुरा नगरी की गुहा में गया। वहाँ दिवाकर देव ने वन्दना कर वज्रकुमार के पिता सोमदत्त को सब समाचार कह दिया। समस्त भाईयों को बड़े कष्ट से विदा कर वज्रकुमार मुनि हो गया।

इसी बीच में मथुरा में एक दूसरी कथा घटी। वहाँ पूतिगन्ध राजा राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम उर्मिला था। उर्मिला सम्यग्दृष्टि तथा जिन धर्म की प्रभावना में अत्यन्त लीन थी। वह प्रतिवर्ष अष्टाह्निक पर्व में तीन बार जिनेन्द्र भगवान की रथ यात्रा कराती थी। उसी नगरी में एक सागरदत्त सेठ रहता था, उसकी सेठानी का नाम समुद्रदत्ता था। उन लोगों के एक दरिद्रा नाम की पुत्री हुई। सागरदत्त के मर जाने पर एक दिन दरिद्रा दूसरे के घर में फेंके हुए भात के सीथ खा रही थी। उसी समय चर्या के लिये प्रविष्ट हुए दो मुनियों ने उसे वैसा

करते हुए देखा। तदनन्तर छोटे मुनि ने बड़े मुनि से कहा कि हाय बेचारी बड़े कष्ट से जीवन बिता रही है। यह सुनकर बड़े मुनि ने कहा कि यह इसी नगरी में राजा की प्रिय पट्टरानी होगी। भिक्षा के लिये भ्रमण करते हुए एक बौद्ध साधु ने मुनिराज के वचन सुनकर विचार किया कि मुनि का कथन अन्यथा नहीं होता, इसलिये वह उसे अपने विहार में ले गया और वहाँ अच्छे आहार से उसका पालन-पोषण करने लगा।

एक दिन भरी जवानी में वह चैत्र मास के समय झूला झूल रही थी कि उसे देख कर राजा अत्यन्त बिरहावस्था को प्राप्त हो गया। तदनन्तर मन्त्रियों ने उसके लिये बौद्ध साधु से याचना की। उसने कहा कि यदि राजा हमारे धर्म को ग्रहण करे तो मैं इसे दे दूँगा। राजा ने वह सब स्वीकृत कर उसके साथ विवाह कर लिया और वह उसकी अत्यन्त प्रिय पट्टरानी बन गयी।

फाल्गुन मास की नन्दीश्वर यात्रा में उर्मिला ने रथ यात्रा की तैयारी की। उसे देख, उस पट्टरानी ने राजा से कहा कि हे देव! मेरा बुद्ध भगवान् का रथ इस समय नगर में पहले घूमे। राजा ने कहा दिया कि ऐसा ही होगा। तदनन्तर उर्मिला ने कहा कि यदि मेरा रथ पहले घूमता है तो मेरी आहार में प्रवृत्ति होगी, अन्यथा नहीं। ऐसी प्रतिज्ञा कर वह क्षत्रियगुहा में सोमदत्त आचार्य के पास गयी। उसी समय वज्रकुमार मुनि की वन्दना-भक्ति के लिये दिवाकरदेव आदि विद्याधर आये थे। वज्रकुमार मुनि ने यह सब वृत्तान्त सुनकर उनसे कहा कि आप लोगों को प्रतिज्ञा कर आरूढ़ उर्मिला की रथयात्रा कराना चाहिए। तदनन्तर उन्होंने बुद्ध दासी का रथ तोड़कर बड़ी विभूति के साथ उर्मिला की रथ यात्रा कराई। उस अतिशय को देखकर प्रतिबोध को प्राप्त हुई बुद्धदासी तथा अन्य लोग जैन धर्म में लीन हो गये।

यमपाल की कथा

सुरम्य देश पोदनपुर नगर में राजा महाबल रहता था। नन्दीश्वर पर्व की अष्टमी के दिन राजा ने यह घोषणा की कि आठ दिन तक जीव

घात नहीं किया जावेगा। राजा का बल नाम का पुत्र था, जो कि मांस खाने में आसक्त था उसने यह विचार कर कि यहाँ कोई पुरुष दिखाई नहीं दे रहा है, इसलिये छिपकर राजा के बगीचे में राजा के मेढ़ा को मरवाकर तथा पकवा कर खा लिया। राजा ने जब मेढ़ा मारे जाने का समाचार सुना, तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने मेढ़ा मारने वाले की खोज शुरू कर दी। उस बगीचे का माली पेड़ के ऊपर चढ़ा था। उसने मेढ़ा को मारते हुए राजकुमार को देख लिया था। माली ने रात में यह बात अपनी स्त्री से कही। तदनन्तर छिपे हुए गुप्तचर पुरुष ने राजा से यह समाचार कह दिया। प्रातःकाल माली भी बुलाया गया। उसने भी यह समाचार फिर कह दिया। मेरी आज्ञा को मेरा पुत्र ही खण्डित करता है इससे रुष्ट होकर राजा ने कोटपाल से कहा कि बलकुमार के नौ टुकड़े करा दो अर्थात् उसे मरवा दो।

तदनन्तर उस कुमार को मारने के स्थान पर ले जाकर चाण्डाल को लाने के लिये जो आदमी गये थे उन्हें देखकर चाण्डाल ने अपनी स्त्री से कहा कि हे प्रिये। तुम इन लोगों से यह कह दो कि चाण्डाल गाँव गया है। ऐसा कहकर वह घर के कोने में छिपकर बैठ गया। जब सिपाहियों ने चाण्डाल को बुलाया तब चाण्डाली ने कह दिया कि वह आज गाँव गए हैं। सिपाहियों ने कहा कि वह पापी अभागा आज गाँव चला गया। राजकुमार को मारने से उसे बहुत भारी सुवर्ण और रत्नादिका लाभ होता। उनके वचन सुनकर चाण्डाली को धन का लोभ आ गया। अतः वह मुख से तो बार-बार यही कहती रही कि वह गाँव गया है। परन्तु हाथ के संकेत से उसे दिखा दिया। तदनन्तर सिपाहियों ने उसे घर से निकाल कर मारने के लिये वह राजकुमार सौंप दिया। चाण्डाल ने कहा कि मैं आज चतुर्दशी के दिन जीवघात नहीं करता हूँ। तब सिपाहियों ने उसे ले जाकर राजा से कहा कि देव। यह राजकुमार को नहीं मार रहा है। उसने राजा से कहा कि एक बार मुझे साँप ने डस लिया था, जिससे मृत समझकर मुझे श्मशान में डाल दिया गया था। वहाँ सर्वोषधि ऋद्धि के धारक मुनिराज के शरीर की वायु से मैं पुनः जीवित हो गया। उस

समय मैंने उन मुनिराज के पास चर्तुदर्शी के दिन जीवघात न करने का व्रत लिया था, इसलिये आज मैं नहीं मार रहा हूँ - आप जो जानो सो करें। 'अस्पृश्य चाण्डाल के भी व्रत होता है' यह विचार कर राजा बहुत रुष्ट हुआ और उसने दोनों को मजबूत बंधवाकर सुमार (शिशुमार) नामक तालाब में डलवा दिया। उन दोनों में चाण्डाल ने प्राणघात होने पर भी अहिंसा व्रत को नहीं छोड़ा था, इसलिए उसके व्रत के माहात्म्य से जलदेवता ने जल के मध्य सिंहासन, मणिमय मण्डप, दुन्दभिबाजों का शब्द तथा साधुकार अच्छा किया आदि शब्दों का उच्चारण यह सब महिमा की। महाबल राजा ने जब यह समाचार सुना तब भयभीत होकर उसने चाण्डाल का सम्मान किया तथा अपने छत्र के नीचे उसका अभिषेक कराकर उसे स्पर्श करने के योग्य विशिष्ट पुरुष घोषित कर दिया। यह प्रथम अणुव्रत की कथा पूर्ण हुयी।

धनदेव की कथा

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र सम्बन्धी पुष्कलावती देश में एक पुण्रीकिणी नामक नगरी है। उसमें जिनदेव और धनदेव नाम के दो अल्प पूंजीवाले व्यापारी रहते थे। उन दोनों में धनदेव सत्यवादी था। एक बार वे दोनों जो लाभ होगा उसे आधा-आधा ले लेवेंगे ऐसी बिना गवाह की व्यवस्था कर दूर देश गये। वहाँ बहुत सा धन कमाकर लौटे और कुशलता पूर्वक पुण्डरीकि नगरी आ गये। उनमें जिनदेव, धनदेव के लिये लाभ का आधा भाग नहीं देता था। वह उचित समझकर थोड़ा सा द्रव्य उसे देता था। तदनन्तर झगड़ा होने पर न्याय होने लगा। पहले कुटुम्बीजनों के सामने फिर महाजनों के सामने और अन्त में राजा के आगे मामला उपस्थित किया गया। परन्तु बिना गवाही का व्यवहार होने से जिनदेव कह देता कि मैंने इसके लिये लाभ का आधा भाग देना नहीं कहा था, उचित भाग ही देना कहा था। धनदेव सत्य ही कहता था कि दोनों का आधा-आधा भाग ही निश्चित हुआ था। तदनन्तर राजकीय नियम के अनुसार उन दोनों को दिव्य न्याय दिया गया। अर्थात् उनके हाथों पर जलते हुए अंगारे रखे गए। इस दिव्यन्यास से धनदेव निर्दोष

सिद्ध हुआ, दूसरा नहीं। तदनन्तर सब धन धनदेव के लिये दिया गया और धनदेव सब लोगों के द्वारा पूजित हुआ तथा धन्यवाद को प्राप्त हुआ। इस प्रकार द्वितीय अणुव्रत की कथा है।

नीली की कथा

लाट देश के भृगुकच्छ नगर में राजा बसुपाल रहता था। वहीं एक जिनदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम जिनदत्ता था। उनके एक नीली नाम की पुत्री थी, जो अत्यन्त रूपवती थी। उसी नगर में एक समुद्रगुप्त नाम का सेठ रहता था, उसकी स्त्री का नाम सागरदत्त था और उन दोनों के एक सागरदत्त नाम का पुत्र था। एक बार महापूजा के अवसर पर मन्दिर में कायोत्सर्ग से खड़ी हुयी तथा समस्त आभूषणों से सुंदर नीली को देखकर सागरदत्त ने कहा कि क्या यह भी कोई देवी है ? यह सुनकर उसके मित्र प्रियदत्त ने कहा कि यह जिनदत्त सेठ की पुत्री नीली है। नीली का रूप देखने से सागरदत्त उसमें अत्यन्त आसक्त हो गया और यह किस तरह प्राप्त हो सकती है, इस प्रकार उसके विवाह की चिन्ता से दुर्बल हो गया। समुद्रदत्त ने यह सुनकर उससे कहा कि हे पुत्र। जैन को छोड़कर अन्य किसी के लिये जिनदत्त इस पुत्री को विवाह के लिये नहीं देता है।

तदनन्तर वे दोनों पिता पुत्र कपट से जैन हो गये और नीली को विवाह लिया। विवाह के पश्चात् वे फिर बुद्धभक्त हो गये। उन्होंने नीली का पिता के घर जाना भी बन्द कर दिया। इस प्रकार धोखा होने पर जिनदत्त ने यह कहकर संतोष कर लिया कि यह पुत्री मेरे हुई ही नहीं है अथवा कुआं आदि में गिर गई है अथवा मर गई है। नीली अपने पति को प्रिय थी अतः वह ससुराल में, जिनधर्म का पालन करती हुई एक भिन्न घर में रहने लगी।

समुद्रगुप्त ने यह विचारकर कि बौद्ध साधुओं के दर्शन से, संसर्ग से, उनके वचन, धर्म और देव का नाम सुनने से काल पाकर यह बुद्ध की भक्त हो जायेगी, एक दिन समुद्रदत्त ने कहा कि नीली बेटा। बौद्ध साधु बहुत ज्ञानी होते हैं, उन्हें देने के लिये हमें भोजन बनाकर

देओ। तदनन्तर नीली ने बौद्ध साधुओं को निमन्त्रित कर बुलाया और उनकी एक-एक प्राणहिता (पनहिया) जूती को अच्छी तरह पीसकर तथा मसालों से सुसंस्कृत कर उन्हें खाने के लिए दे दिया। वे बौद्ध भोजन कर जब जाने लगे तो उन्होंने पूँछा मेरी जूती कहाँ हैं। नीली ने कहा कि आप ही अपने ज्ञान से जानिये, जहाँ वे स्थित है। यदि ज्ञान नहीं है तो वमन कीजिये, आपकी जूतियाँ आपके ही पेट में स्थित है। इस प्रकार वमन किये जाने पर उनमें जूतियों के टुकड़े दिखाई दिये। इस घटना से नीली के ससुर पक्ष के लोग बहुत रुष्ट हो गये।

तदनन्तर सागरदत्त की बहन ने क्रोध वश उसे परपुरुष के संसर्ग का झूठा दोष लगाया। जब इस दोष की प्रसिद्धि सब ओर फैल गई, तब नीली भगवान जिनेन्द्र के आगे सन्यास लेकर कायोत्सर्ग से खड़ी हो गई और उसने नियम ले लिया कि इस दोष से पार होने पर ही मेरी भोजन आदि में प्रवृत्ति होगी, अन्य प्रकार नहीं। तदनन्तर क्षोभ को प्राप्त हुई नगरदेवता ने आकर रात्रि में उससे कहा कि हे महासति। इस तरह प्राणत्याग मत करो। मैं राजा को तथा नगर के प्रधान पुरुषों को स्वप्न देती हूँ कि नगर के सब प्रधान द्वार कीलित हो गये हैं। वे महापतिव्रता स्त्री के बांये चरण से खुलेंगे। वे प्रधान द्वार प्रातःकाल आपके पैर का स्पर्श कर खुलेंगे। ऐसा कहकर वह नगरदेवता राजा आदि को पूर्वोक्त स्वप्न का स्मरण कर नगर की सब स्त्रियों के पैरों से द्वारों की ताड़ना कराई। परन्तु किसी भी स्त्री के द्वारा एक भी प्रधान द्वार नहीं खुला। सब स्त्रियों के बाद नीली को भी वहाँ उठाकर ले जाया गया। उसके चरणों के स्पर्श से सभी प्रधान द्वार खुल गये। इस प्रकार नीली निर्दोष घोषित हुई और राजा आदि के द्वारा सम्मान को प्राप्त हुई। यह चतुर्थ अणुव्रत की कथा पूर्ण हुयी।

जयकुमार की कथा

कुरूजांगल देश के हस्तिनागपुर नगर में कुरुवंशी राजा सोमप्रभ रहते थे। उनके जयकुमार नाम का पुत्र था। वह जयकुमार परिग्रह

परिणामव्रत का धारी था तथा अपनी स्त्री सुलोचना से ही सम्बन्ध रखता था। एक समय पूर्व विद्याधर के भवों की कथा के बाद जिन्हें अपने पूर्वभवों का ज्ञान हो गया था ऐसे जयकुमार और सुलोचना हिरण्यधर्मा और प्रभावती नामक विद्याधर युगल का रूप रखकर मेरू आदि पर वन्दना-भक्ति करके कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वार प्रतिष्ठापित चौबीस जिनालयों की वन्दना करने के लिये आये। उसी अवसर पर सौधर्मेन्द्र ने स्वर्ग में जयकुमार के परिग्रहपरिणामव्रत की प्रशंसा की। उसकी परीक्षा करने के लिए रतिप्रभ नामका देव आया। उसने स्त्री का रूप रख चार स्त्रियों के साथ जयकुमार के समीप जाकर कहा कि सुलोचना के स्वयंवर के समय जिसने तुम्हारे साथ युद्ध किया था उस नमि विद्याधर राजा की रानी को, जो कि अत्यन्त रूपवती, नवयौवनमती, समस्त विद्याओं को धारण करने वाली और उससे विरक्तचित्त है, स्वीकृत करो, यदि उसका राज्य और अपना जीवन चाहते हो तो। यह सुनकर जयकुमार ने कहा कि हे सुन्दरी। ऐसा मत कहो, परस्त्री मेरे लिए माता के समान है। तदनन्तर उस स्त्री ने जयकुमार के ऊपर बहुत उपसर्ग किया, परन्तु उसका चित्त विचलित नहीं हुआ। तदनन्तर वह रतिप्रभदेव माया को संकुचित कर, पहले का सब समाचार कहकर प्रशंसा कर और वस्त्र आदि से पूजाकर स्वर्ग चला गया। इस प्रकार पंचम अणुव्रत की कथा पूर्ण हुयी।

परिग्रह व्रती अणुव्रत से जयकुमार पूजातिशय को प्राप्त हुआ था।

धन श्री की कथा

लाटदेश के भृगुकच्छ नगर में राजा लोकपाल रहता था। वहीं एक धनपाल नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम धनश्री था। धनश्री जीव हिंसा से कुछ भी विरत नहीं थी अर्थात् निरन्तर जीव हिंसा में तत्पर रहती थी। उसकी सुन्दरी नाम की पुत्री और गुणपाल नाम का पुत्र था। जब धनश्री के पुत्र नहीं हुआ था तब उसने एक कुण्डल नामक बालक का पुत्र बुद्धि से पालन-पोषण किया। समय पाकर जब धनपाल

की मृत्यु हो गई तब धनश्री उस कुण्डल के साथ कुकर्म करने लगी। इधर धनश्री का पुत्र गुणपाल जब गुण और दोषों को जानने लगा तब उससे शंकित होकर धनश्री ने कुण्डल से कहा कि मैं गोखर में गाएँ चराने के लिए गुणपाल को जंगल भेजूँगी सो तुम उसके पीछे लगकर उसे वहाँ मार डालो, जिससे हम दोनों का स्वच्छन्द रहना हो जायेगा, कोई रोक नहीं सकेगा। यह सब कहती हुयी माता को सुन्दरी ने सुन लिया, इसलिए उसने अपने भाई गुणपाल से कह दिया कि आज रात्रि में गोधन लेकर गोखर में माता तुम्हें जंगल भेजेगी और वहाँ कुण्डल के हाथ से तुम्हें मरवा डालेगी, इसलिए तुम्हें सावधान रहना चाहिए।

धनश्री ने रात्रि के पिछले पहर गुणपाल से कहा हे पुत्र। कुण्डल का शरीर ठीक नहीं है इसलिये आज तुम गोंखर में गोधन लेकर जाओ। गुणपाल गोधन को लेकर जंगल गया और वहाँ एक काष्ठ को कपड़े से ढ़ककर छिपकर बैठ गया। कुण्डल ने आकर यह गुणपाल है ऐसा समझकर वस्त्र से ढके हुए काष्ठ पर प्रहार किया। उसी समय गुणपाल ने तलवार से उसे मार डाला। जब गुणपाल घर आया तब धनश्री ने पूछा कि रे गुणपाल। कुण्डल कहाँ गया ? गुणपाल ने कहा कि कुण्डल की बात को यह तलवार जानती है। तदनन्तर खून से लिप्त बाहु को देखकर धनश्री ने उसी तलवार से गुणपाल को मार दिया। भाई को मारती देख सुन्दरी ने उसे मूसल से मारना शुरू किया। इसी बीच में कोलाहल होने से कोतवालों ने धनश्री को पकड़कर राजा के आगे उपस्थित किया। राजा ने उसे गधे पर चढ़ाया तथा कान, नाक आदि कटवाकर दण्डित किया, जिससे मरकर दुर्गति को प्राप्त हुई। इस तरह प्रथम अव्रत से सम्बद्ध कथा पूर्ण हुई।

सत्यघोष की कथा

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी सिंहपुर नगर में राजा सिंहसेन रहता था। उसकी रानी का नाम रामदत्ता था। उसी राजा का एक श्रीभूति नाम का पुरोहित था। वह जनेऊ में कैंची बाँधकर घूमा करता था और कहता था कि यदि मैं असत्य बोलूँ तो इस कैंची से अपनी

जिह्वा का छेद कर लूँ। इस तरह कपट से रहते हुए, उस पुरोहित का सत्यघोष यह दूसरा नाम चल पड़ा। लोग विश्वास को प्राप्त होकर उसके पास अपना धन रखने लगे। वह उस धन में से कुछ तो रखने वालों को दे देता था और बाकी स्वयं ग्रहण कर लेता था। लोग रोने से डरते थे और कोई रोता भी था तो राजा उसकी सुनता भी नहीं था।

तदनन्तर एक समय पद्मखण्ड नगर से एक समुद्रगुप्त नाम का सेठ आया। वह वहाँ सत्यघोष के पास अपने पाँच बहुमूल्य रत्न रखकर धन उपार्जित करने के लिये दूसरे पार चला गया और वहाँ धनोपार्जन करके जब लौट रहा था तब उसका जहाज फट गया। काठ के एक पटिये से वह समुद्र को पार कर रखे हुए मणियों को प्राप्त करने के मन से सिंहपुर में सत्यघोष के पास आया। रंक के समान आते हुए उसे देखकर उसके मणियों को हरने के मन से सत्यघोष ने विश्वास की पूर्ति के लिये समीप में बैठे हुए लोगों से कहा कि यह पुरुष जहाज फट जाने से पागल हो गया है और यहाँ आकर मणि माँगेगा। उस सेठ ने आकर तथा प्रमाणकर कहा कि हे सत्यघोष पुरोहित। मैं धन कमाने के लिये गया था। धनोपार्जन करने के बाद मेरे ऊपर बड़ा संकट आ पड़ा है इसलिये मैंने जो रत्न तुम्हें रखने के लिए दिये थे वे रत्न कृपाकर मुझे दीजिये। जिससे जहाज फट जाने के कारण निर्धनता को प्राप्त हुए अपने आप का उद्धार कर सकूँ। उसके वचन सुनकर कपटी सत्यघोष ने पास में बैठे हुए लोगों से कहा कि देखो, मैंने पहले आप लोगों से बात कही थी वह सत्य निकली। लोगों ने कहा कि आप ही जानते है, इस पागल को इस स्थान से निकाल दिया जावे। ऐसा कहकर उन्होंने समुद्रगुप्त को घर से निकाल दिया। 'वह पागल है' ऐसा कहा जाने लगा। सत्यघोष ने मेरे पाँच बहुमूल्य रत्न ले लिये हैं इस प्रकार रोता हुआ वह नगर में घूमने लगा। राजभवन के पास एक इमली के वृक्ष पर चढ़कर वह पिछली रात में रोता हुआ यही कहता था। यह करते हुए उसे छह माह निकल गये।

एक दिन उसका रोना सुनकर रामदत्ता रानी ने राजा सिंहसेन से

कहा कि देव ! यह पुरुष पागल नहीं है, राजा ने भी कहा कि तो क्या सत्यघोष से चोरी की संभावना की जा सकती है। रानी ने फिर कहा कि देव ! उसके चोरी की संभावना की जा सकती है क्योंकि यह सदा ऐसे ही वचन कहता है। यह सुनकर राजा ने कहा कि यदि सत्यघोष के चोरी की संभावना है तो तुम परीक्षा करो। आज्ञा पाकर रामदत्ता ने एक दिन राजा की सेवा के लिये आते हुए सत्यघोष को बुलाकर पूछा कि आज बहुत देर से क्यों आये हैं? सत्यघोष ने कहा कि आज मेरी ब्राह्मणी का भाई पाहुना बनकर आया था, उसे भोजन कराते हुए बहुत देर लग गयी। रानी ने फिर कहा अच्छा, यहाँ थोड़ी देर बैठो, मुझे बहुत शौक है। आज अक्षक्रीड़ा करें - जुआ खेलें। राजा भी वहीं आ गये और उन्होंने कह दिया कि ऐसा करो।

तदनन्तर जब जुआ का खेल होने लगा तब रामदत्ता रानी ने निपुणमति नाम की स्त्री से उसके कान में लगकर कहा कि तुम सत्यघोष पुरोहित, रानी के पास बैठे हैं उन्होंने मुझे पागल के रत्न माँगने के लिए भेजा है, ऐसा उसकी ब्राह्मणी के आगे कहकर वे रत्न माँगकर शीघ्र आओ। तदनन्तर निपुणमति ने जाकर वे रत्न माँगे, परन्तु ब्राह्मणी ने नहीं दिये, क्योंकि सत्यघोष ने उसे पहले ही मना कर रक्खा था कि किसी के मांगने पर रत्न नहीं देना। निपुणमती ने आकर रानी के कान में कहा कि वह नहीं देती है। तदनन्तर रानी ने पुरोहित की अंगूठी जीत ली, उसे पहिचान के रूप में देकर निपुणमति को फिर से भेजा, परन्तु उसने फिर भी नहीं दिये। अब की बार रानी ने पुरोहित का कैंची सहित जनेऊ जीत लिया। निपुणमति ने उसे पहिचान के रूप में दिया और दिखाया उसे देखकर ब्राह्मणी आश्वस्त हुई तथा नहीं देती हूँ तो पुरोहित कुपित होंगे, इस तरह भयभीत भी हुई, अतः उसने वे मणि निपुणमति को दे दिये और निपुणमति ने रामदत्ता को सौंप दिये। रामदत्ता ने राजा को दिखाये। राजा ने उन रत्नों को बहुत से रत्नों में मिलाकर उस पागल से कहा कि अपने रत्न पहिचान कर उठा ले। उसने उसी प्रकार जब अपने रत्न उठा लिये तब राजा और रानी ने उसे वणिकपुत्र - सेठ स्वीकृत किया अर्थात् यह मान लिया कि यह पागल नहीं है किन्तु वणिक पुत्र है।

तदनन्तर राजा ने सत्यघोष से पूँछा कि तुमने यह कार्य किया है ? उसने कहा कि देव ! मैं यह काम नहीं करता हूँ। मुझे ऐसा करना क्या युक्त है ? तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुए राजा ने उसके लिए तीन दण्ड निर्धारित किए।

1. तीन थाली गोबर खाओ।
2. पहलवानों के तीन मुक्के खाओ अथवा
3. समस्त धन देओ।

उसने विचारकर पहले गोबर खाना प्रारंभ किया, पर जब गोबर खाने में असमर्थ रहा, तब पहलवानों के मुक्के सहन करना शुरू किया पर अब उसमें भी असमर्थ रहा तब सब धन देना प्रारम्भ किया। इस प्रकार तीनों दण्डों को भोगकर वह मरा और तीव्र लोभ के कारण राजा के खजाने में अंगधन जाति का साँप हुआ। वहाँ भी मरकर दीर्घ संसारी हुआ। इस प्रकार द्वितीय अव्रत की कथा पूर्ण हुयी।

तापस की कथा

वत्सदेव के कौशाम्बी नगरी में राजा सिंहरथ रहता था। उसकी रानी का नाम विजया था। वहाँ एक चोर कपट से तापस होकर रहता था। वह दूसरे की भूमि का स्पर्श न करता हुआ लटकते हुए सींके पर बैठकर दिन में पंचाग्नि तप करता था और रात्रि में कौशाम्बी नगरी को लूटता था। एक समय 'नगर लुट गया है' इस तरह महाजन से सुनकर राजा ने कोट्टपाल से कहा - रे कोट्टपाल ! सात रात्रि के भीतर चोर लाओ या अपना शिर लाओ। तदनन्तर चोर को न पाता हुआ कोट्टपाल चिन्ता में निमग्न हो अपरान्ह काल में बैठा था कि किसी भूखे ब्राह्मण ने आकर उससे भोजन माँगा। कोट्टपाल ने कहा - हे ब्राह्मण ! तुम अभिप्राय को नहीं जानते। मुझे तो प्राणों का संदेह हो रहा है और तुम भोजन माँग रहे हो। यह वचन सुनकर ब्राह्मण ने पूँछा कि तुम्हें प्राणों का सन्देह किस कारण हो रहा है ? कोट्टपाल ने कारण कहा। उसे सुनकर ब्राह्मण ने फिर पूँछा यहाँ क्या कोई अत्यन्त निःस्पृह वृत्तिवाला पुरुष रहता है ? कोट्टपाल ने कहा कि विशिष्ट तपस्वी रहता है, परन्तु उसका

यह कार्य सभव नहीं है। ब्राह्मण ने कहा कि वही चोर होगा, क्योंकि वह अत्यन्त निःस्पृह है। इस विषय में मेरी कहानी सुनिये -

(1) मेरी ब्राह्मणी अपने आपको महासती कहती है और मैं पर पुरुष के शरीर का स्पर्श नहीं करती यह कहकर तीव्र कपट से समस्त शरीर को कपड़े से आच्छादित कर अपने पुत्र को स्तन देती है - दूध पिलाती है। परन्तु रात्रि में गृह के बरेदी के साथ कुकर्म करती है।

(2) यह देख मुझे वैराग्य उत्पन्न हो गया और मैं मार्ग में हितकारी भोजन के लिये सुवर्णशलाका को बाँस की लाठी के बीच रखकर तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ा। आगे चलने पर मुझे एक ब्रह्मचारी बालक मिल गया, वह हमारे साथ हो गया। मैं उसका विश्वास नहीं करता था, इसलिए उस लाठी की बड़े यत्न से रक्षा करता था। उस बालक ने ताड़ लिया - समझ लिया कि यह लाठी समगर्ा है - इसके भीतर कुछ धन है। एक दिन वह बालक रात्रि में कुम्भकार के घर सोया। प्रातः वहाँ से चलकर जब दूर आ गया तब मस्तक में लगे हुए सड़े तृण को देखकर कपटवश उसने मेरे आगे कहा कि हाय हाय मैं दूसरे के तृण को ले आया। ऐसा कहकर वह लौटा और उस तृण को उसी कुम्भकार के घर पर डालकर सांयकाल के समय तब हमसे मिला जब कि मैं भोजन कर चुका था। वह बालक जब भिक्षा के लिये जाने लगा, तब मैंने सोचा कि यह तो बहुत पवित्र है, इस तरह उसका विश्वास कर कुत्ते आदि को भगाने के लिये वह लाठी उसके लिये दे दी। उसे लेकर वह चला गया।

(3) तदनन्तर महाअटवी में जाते हुए मैंने एक वृद्ध पक्षी का बड़ा कपट देखा। एक बट वृक्ष पर रात्रि के समय बहुत पक्षियों का समूह एकत्रित हुआ। उसमें अत्यन्त वृद्ध पक्षी ने रात्रि के समय अपनी भाषा में दूसरे पक्षियों से कहा कि हे पुत्री ! अब मैं अधिक चल नहीं सकता। कदाचित् भूख से पीड़ित होकर आप लोगों के पुत्रों का भक्षण करने लगूँ, इसलिये प्रातःकाल आप लोग हमारे मुख को बाँध कर जाइये। पक्षियों ने कहा कि हाय पिताजी ! आप तो हमारे बाबा है, आप में इसकी संभावना कैसे की जा सकती है ? वृद्ध पक्षी ने कहा कि 'विभुक्षितः किं न करोति

पापम्' भूखा प्राणी क्या पाप नहीं करता ? इस तरह प्रातःकाल सब पक्षी उस वृद्ध के कहने से उसके मुख को बाँधकर चले गये। वह बँधा हुआ वृद्ध पक्षी, सब पक्षियों के चले जाने पर अपने पैरों से मुख का बन्धन दूर कर उन पक्षियों के बच्चों को खा गया और जब उनके आने का समय हुआ तब फिर से पैरों के द्वारा मुख में बन्धन डालकर कपट से क्षीणोदय होकर पड़ा रहा।

(4) तदनन्तर मैं एक नगर पहुँचा। वहाँ मैंने चौथा कपट देखा। वह इस प्रकार कि उस नगर में एक चोर तपस्वी का रूप रखकर तथा दोनों हाथों से मस्तक के ऊपर एक बड़ी शिला को उठाकर दिन में खड़ा रहता था और रात्रि में 'हे जीव हटो मैं पैर रख रहा हूँ, हे जीव हटो मैं पैर रख रहा हूँ' इस प्रकार कहता हुआ भ्रमण करता था। समस्त भक्तजन उसे 'अपसर जीवक' इस नाम से कहने लगे थे। वह चोर जब कोई गड्ढा आदि एकान्त स्थान मिलता तो सब ओर देखकर सुवर्ण से विभूषित प्रणाम करते हुए एकाकी पुरुष को उस शिला से मार डालता और उसका धन ले लेता था। इन चार तीव्र कपटों को देखकर मैंने यह श्लोक बनाया था-

अबालेति - पुत्र का स्पर्श न करने वाली स्त्री, तृण का घात न करने वाला ब्राह्मण, वन में काष्ठ मुख पक्षी और नगर में अपसर जीवक ये चार महाकपट मैंने देखे है -

ऐसा कहकर तथा कोट्टपाल को धीरज बँधाकर वह ब्राह्मण सींके में रहने वाले तपस्वी के पास गया। तपस्वी के सेवकों ने उसे वहाँ से निकालना भी चाहा, परन्तु वह रात्र्यन्ध बनकर वहीं पड़ा रहा और एक कोने में बैठ गया। तपस्वी के उन सेवकों ने यह सचमुच ही रात्र्यन्ध है या नहीं, इसकी परीक्षा करने के लिये तृण की काड़ी तथा अंगुली आदिक उसके नेत्रों के पास चलायी परन्तु वह देखता हुआ भी नहीं देखता रहा, जब बड़ी रात्रि हो गयी तब उसने गुहारूप अन्धकूप में रखे जाते हुए नगर के धन को देखा और उन लोगों के खानपान आदि को देखा। प्रातःकाल उसने जो कुछ रात्रि में देखा था उसे कहकर राजा के द्वारा मारे

जाने वाले कोट्टपाल की रक्षा की। सींके में बैठने वाला वह तपस्वी उस कोट्टपाल के द्वारा पकड़ा गया और बहुत भरी यातनाओं से दुखी होता हुआ मरकर दुर्गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार तृतीय अव्रत की कथापूर्ण हुयी।

यमदण्ड कोतवाल की कथा

आहीर देश के नासिक्य नगर में राजा कनकरथ रहते थे। उसकी रानी का नाम कनकमाला था। उनका एक यमदण्ड नाम का कोतवाल था। उसकी माता अत्यन्त सुन्दरी थी। वह यौवन अवस्था में ही विधवा हो गई थी तथा व्यभिचारिणी बन गई थी। एक दिन उसकी पुत्रवधु ने रखने के आभूषण दिया। उस आभूषण को पहिनकर वह रात्रि में अपने पहले से संकेतित जार के पास जा रही थी। यमदण्ड ने उसे देखा और एकान्त में उसका सेवन किया। यमदण्ड ने उसका आभूषण लाकर अपनी स्त्री को दे दिया। स्त्री ने देखकर कहा कि यह आभूषण तो मेरा है, मैंने रखने के लिए सास के हाथ में दिया था। स्त्री के वचन सुनकर यमदण्ड कोतवाल ने विचार कि मैंने जिसके साथ उपभोग किया है वह मेरी माता होगी। तदनन्तर यमदण्ड, माता के जार के संकेतगृह (मिलने के स्थान) पर जाकर उसका पुनः सेवन किया और उसमें आसक्त होकर गूढ़रीति से उसके साथ कुकर्म करने लगा।

एक दिन उसकी स्त्री को जब यह सहन नहीं हुआ। तब उसने अत्यन्त कुपित होकर धोविन से कहा कि हमारा पति अपनी माता के साथ रमता है। धोविन ने मालिन से कहा और मालिन कनकमाला रानी की अत्यन्त विश्वासपात्र थी, वह उसके निमित्त फूल लेकर गई। रानी ने कुतूहलवश उससे पूछा कि कोई अपूर्व बात जानती हो ? मालिन कोतवाल से द्वेष रखती थी, अतः उसने रानी से कह दिया कि देवी ! यमदण्ड कोतवाल अपनी माता के साथ रमण करता है। कनकमाला ने यह समाचार राजा से कहा और राजा ने गुप्तचर के द्वारा उसके कुकर्म का निश्चय कर कोतवाल को पकड़ाया। दण्डित होने पर वह दुर्गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार चतुर्थ अव्रत की कथा पूर्ण हुयी।

श्मश्रुनवनीत की कथा

अयोध्या नगरी में भवदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम धनदत्ता था और पुत्र का नाम लुब्धदत्त था। एक बार वह लुब्धदत्त व्यापार के निमित्त दूर गया। वहाँ उसने जो धन कमाया था वह सब चोरों ने चुरा लिया तदनन्तर अत्यन्त निर्धन होकर वह किसी मार्ग से आ रहा था। वहाँ उसने किसी समय एक गोपाल से पीने के लिये छाछ माँगी छाछ पी चुकने पर उसका कुछ मक्खन मूछों में लग गया। उसे देख उसने वह मक्खन यह विचार कर निकाल लिया कि इससे व्यापार होगा। इस तरह वह प्रतिदिन मक्खन का संचय करने लगा, जिससे उसका श्मश्रुनवनीत यह नाम प्रचलित हो गया।

इस प्रकार जब उसके पास एक प्रस्थप्रमाण घी हो गया तब वह घी के बर्तन को अपने पैरों के समीप रखकर तथा शीतलकाल होने से झोपड़ी के द्वार पर पैरों के समीप अग्नि रखकर विस्तर पर पड़ गया। वह विस्तर पर पड़ा-पड़ा विचार करता है कि इस घी से बहुत धन कमाकर मैं सेठ हो जा ऊँगा, फिर धीरे-धीरे सामन्त, महासामन्त, राजा और अधिराजा का पद प्राप्त कर क्रम से सबका चक्रवर्ती बन जाऊँगा। उस समय मैं सात खण्ड के महल में शय्यातल पर पड़ा होऊँगा। चरणों के समीप बैठी हुई सुन्दर स्त्री मुट्ठी से मेरे पैर दाबेगी और मैं स्नेह वश उससे कहूँगा कि तुझे पैर दाबना भी नहीं आता। ऐसा विचारकर उसने अपने आपको सचमुच ही चक्रवर्ती समझ लिया और पैर से तड़ितकर घी का बर्तन गिरा दिया। उस घी से द्वार पर रखी हुई अग्नि बहुत जोर से प्रज्जवलित हो गई, द्वार जलने लगा, जिससे मन के परिणामों से रहित वह निकलने में असमर्थ हो वहीं जलकर मर गया और दुर्गति को प्राप्त हुआ। कथा पूर्ण हुयी। अव्रत की कथा।

श्रीषेण राजा की कथा

मलयदेश के रत्नसंचयपुर में राजा श्रीषेण रहता था। उसकी बड़ी रानी का नाम सिंहनन्दिता और छोटी रानी का नाम अनिन्दिता था।

दोनों रानियों के क्रम से इन्द्र और उपेन्द्र नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुये। उसी नगर में एक सात्यकि नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम जम्बू और पुत्री का नाम सत्यभामा था। पाटलिपुत्र नगर में एक रूद्रभट्टका नाम का ब्राह्मण बालकों को वेद पढ़ाया करता था। उसकी दासी का पुत्र कपिल तीक्ष्णबुद्धि होने से छलपूर्वक वेद को सुनता हुआ उसका पारगामी विद्वान हो गया। रूद्रभट्ट ने क्रुद्ध होकर उस कपिल को पाटलिपुत्र नगर से बाहर निकाल दिया था।

वह कपिल दुपट्टा सहित यज्ञोपवीत को धारणकर ब्राह्मण बन रत्नसंचय नगर में चला गया। सात्यकि ब्राह्मण ने उसे वेद का पारगामी तथा सुन्दर देव 'यह सत्यभामा के योग्य है' ऐसा मान उसके लिये सत्यभामा दे दी। सत्यभामा, रति के समय उसकी विट जैसी चेष्टा देखकर 'यह कुलीन होगा या नहीं' ऐसा विचारकर मन में खेद को धारण करती हुयी रहती थी। इसी अवसर पर रूद्रभट्ट तीर्थयात्रा करता हुआ रत्नसंचय नगर में आया। कपिल, उसे प्रणाम कर अपने सफेद गृह में ले गया तथा भोजन और वस्त्र आदि दिलाकर उसने सत्यभामा तथा अन्य समस्त लोगों के सामने कहा कि 'यह मेरा मित्र है'। सत्यभामा ने एक दिन रूद्रभट्ट को विशिष्ट भोजन तथा बहुत-सा सुवर्ण देकर उसके पैरों में लगकर पूछा कि हे तात् ! कपिल मैं आपके स्वभाव का अंश भी नहीं, इसीलिए यह आपका पुत्र है अथवा नहीं, यह मेरे लिए सत्य कहिये। तदनन्तर रूद्रभट्ट ने कहा कि हे पुत्री ! यह मेरी दासी का पुत्र है। यह सुनकर वह उसके ऊपर विरक्त हो गई तथा 'यह हठपूर्वक मेरे पास आवेगा' ऐसा मानकर वह सिंहनन्दिता ने उसे पुत्री मानकर रख लिया। इस प्रकार एक दिन श्रीषेण राजा ने परम भक्ति से विधिपूर्वक अर्ककीर्ति और अमितगति नामक चारण मुनियों को दान दिया। उसके फलस्वरूप वह रानी राजा के साथ भोगभूमि में उत्पन्न हुई। सत्यभामा ने भी उस दान की अनुमोदना की थी, इसलिए वह भी उसी भोगभूमि में उत्पन्न हुई। राजा श्रीषेण आहारदान के कारण परम्परा से शान्तिनाथ तीर्थंकर हुआ। यह आहारदान का फल मिला है।

कौण्डेश की कथा

कुरूमणि ग्राम में एक गोविन्द नाम का ग्वाला रहता था। उसने कोटर से निकाल कर एक प्राचीन शास्त्र की पूजा की तथा भक्तिपूर्वक पद्मनंदि मुनि के लिए वह शास्त्र दिया। उस शास्त्र के द्वारा पहले के कितने ही मुनियों ने स्वयं पूजा करके तथा दूसरों से कराकर व्याख्यान किया था और उसके बाद वे उस शास्त्र को उसी कोटर में रखकर चले गये थे। गोविन्द बाल्य अवस्था से ही उस शास्त्र को देखकर नित्य ही उसकी पूजा करता था। वह वही गोविन्द निदान से मरकर उसी ग्राम में ग्राम प्रमुख का पुत्र हुआ। एक बार उन्हीं पद्मनन्दि मुनि को देखकर उसे जातिस्मरण हो गया, जिससे तप धारण कर वह कौण्डेश नाम का बहुत बड़ा शास्त्रों का पारगामी मुनि हुआ। यह श्रुतदान-शास्त्रदान का फल है।

सूकर की कथा

लवदेश के घट ग्राम में एक देविल नाम का कुम्हार और धमिल्ल नाम का एक नाई रहता था। उन दोनों ने पथिकजनों के ठहरने के लिए एक धर्मस्थान बनवाया। एक दिन देविल ने मुनि के लिये वहाँ पहले निवास दे दिया। पश्चात् धमिल्ल ने एक परिव्राजक को वहाँ लाकर ठहरा दिया। धमिल्ल और परिव्राजक ने उन मुनि को वहाँ से निकाल दिया, जिससे वे वृक्ष के नीचे रात भर डांश-मच्छर तथा शीत आदि की बाधा को सहन करते हुए ठहरे रहे। प्रातःकाल ऐसा करने से देविल और धमिल्ल दोनों में परस्पर युद्ध हुआ, जिससे दोनों मरकर विन्ध्याचल में क्रम से सूकर और व्याघ्र हुये। वे क्रम-क्रम से बड़े हुए। जिस गुफा में वह सूकर रहता था उसी गुफा में एक दिन समाधिगुप्त और त्रिगुप्त नाम के दो मुनि आकर ठहर गये। उन्हें देखकर देविल के जीव सूकर को जाति स्मरण हो गया, जिससे उसने धर्म श्रवणकर व्रत ग्रहण कर लिया। उसी समय मनुष्य की गंध को सूंघकर मुनियों को खाने के लिए वह व्याघ्र भी वहाँ आ पहुँचा। सूकर, उन मुनियों की रक्षा के निमित्त गुफा के द्वार पर खड़ा हो गया। वहाँ भी वे दोनों परस्पर युद्ध कर मरे। सूकर, मुनियों की रक्षा के अभिप्राय से अच्छे भावों को धारण करता था, इसलिये वह

मरकर सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धियों को धारण करने वाला देव हुआ, परन्तु व्याघ्र, मुनियों के भक्षण के अभिप्राय से खोटे भाव को धारण करता था। इसलिए वह मरकर नरक गति में गया। यह बसतिका दान का फल है। सूकर की कथा पूर्ण हुयी।

मेढ़क की कथा

मगध देश में राजगृह नगर में राजा श्रेणिक, नागदत्त सेठ और उसकी भवदत्ता नाम की सेठानी रहती थी। वह नागदत्त सेठ सदा माया से युक्त रहता था, इसलिए मरकर अपने आंगन की बावड़ी में मेढ़क हुआ। एक दिन भवदत्ता सेठानी को आई देख उस मेढ़क को जाति स्मरण हो गया जिससे वह समीप आकर उसके ऊपर उछलकर चढ़ गया। सेठानी ने उसे बार-बार अलग किया। अलग करने पर टर्र-टर्र शब्द कहता और फिर आकर उसके ऊपर चढ़ जाता। तदनन्तर सेठानी ने यह विचार किया कि यह मेरा कोई इष्ट होगा। ऐसा विचारकर उसने अवधिज्ञानी सुव्रत मुनि से पूछा। मुनि के द्वारा उसका वृतान्त कहे जाने पर सेठानी ने उसे घर ले जाकर बड़े गौरव से रक्खा। एक बार श्रेणिक महाराज, वर्धमानस्वामी को वैभार पर्वत पर आया सुनकर आनन्दभेरी बजवाकर बड़े वैभव से उसकी वन्दना के लिये गये। सेठानी आदि को लेकर घर के अन्य लोग भी जब वन्दना भक्ति के लिये चले गये तब वह मेढ़क पूजा के निमित्त आँगन की बावड़ी का कमल लेकर चला जाता हुआ वह मेढ़क हाथी के पांव से कुचलकर मर गया और पूजा संबंधी अनुराग के वश से उपार्जित पुण्य के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धियों को धारण करनेवाला देव हुआ। अवधिज्ञान से पूर्वभव का वृतान्त जानकर अपने मुकुट के अग्रभाग में मेढ़क का चिन्ह कर वह आया और वर्धमान स्वामी को वन्दना करते समय राजा श्रेणिक ने गौतमस्वामी से पूँछा कि इसके मेढ़क का चिन्ह रखने में क्या कारण है ? गौतमस्वामी ने उसका वृतान्त कहा। उसे सुनकर सब लोग पूजा का अतिशय करने में उद्यत हो गये।

आचार्य विभवसागर जी महाराज के संघस्थ दीक्षित-साधुगण

क्र.		दीक्षा तिथि
	श्रमण विभास्वरसागर जी महाराज	गुरु-आचार्य विरागसागर जी
1.	श्रमण आचरणसागर जी महाराज	10.02.2011, हटा (म.प्र.)
2.	श्रमण अध्ययनसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
3.	श्रमण आवश्यकसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
4.	श्रमण अध्यापनसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
5.	श्रमण अर्हंतसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
6.	श्रमण आचारसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
7.	श्रमण शुद्धात्मसागर जी महाराज	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
8.	श्रमण सिद्धात्मसागर जी महाराज	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
9.	श्रमणी अर्हं श्री माताजी	14.04.2016, शिखरजी (झारखण्ड)
10.	श्रमणी ओम् श्री माताजी	14.04.2016, शिखरजी (झारखण्ड)
11.	श्रमणी समिति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
12.	श्रमणी संस्कृत श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
13.	श्रमणी संस्कृति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
14.	क्षुल्लिका ह्रीं श्री माताजी	18.11.2015, भिलाई (छ.ग.)
15.	क्षुल्लिका आराधना श्री माताजी	17.01.2016, राजिम (छ.ग.)
16.	क्षुल्लिका सिद्ध श्री माताजी	16.11.2016, जैतहरी (म.प्र.)
17.	क्षुल्लिका संस्तुति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

समाधिस्थ साधुगण		समाधि तिथि
1.	श्रमण अध्यात्म सागर जी	2015, दुर्ग (छ.ग.)
2.	श्रमण अनशन सागर जी	2017, शिरड, शहापुर (महा.)
3.	श्रमण समाधिसागर जी महाराज	22.07.2018, मुम्बई (महा.)
4.	श्रमणी विनिर्मला श्री माताजी	2007, नागपुर (महा.)
5.	आर्यिका अनुकम्पा श्री माताजी	2011, सागर (म.प्र.)
6.	श्रमणी प्राज्ञा श्री माताजी	2018, बगरोही (म.प्र.)
7.	क्षुल्लिका विदेह श्री माताजी	2001, कोतमा (म.प्र.)
8.	क्षुल्लिका अर्हद् श्री माताजी	2014, सागर (म.प्र.)

सारस्वत श्रमण! नय चक्रवर्ती! श्रमणाचार्य डॉ.

108 श्री विभवसागरजी महाराज

पूर्व नाम	पण्डित अशोक कुमार जी जैन शास्त्री
जन्मस्थान	किसनपुरा (सागर) म.प्र.
जन्मतिथि	कार्तिक कृष्ण अमावस्या 2033 तदनुकूल 23 अक्टूबर 1976
पिता	श्रावकरत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माता	श्राविकारत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	संस्कृत शास्त्री प्रथम वर्ष (इण्टर)
धार्मिक शिक्षा	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन महाविद्यालय मोराजी सागर म.प्र.
वैराग्य	9 अक्टूबर 1994 को ब्र. व्रत लिया
क्षु. दीक्षा	28 जनवरी 1995 मंगलगिरि सागर म.प्र.
ऐलक दीक्षा	23 फरवरी 1996 देवेन्द्रनगर (पन्ना) म.प्र.
मुनि दीक्षा	14 दिसंबर 1998 अतिशय क्षेत्र बरासौ भिण्ड म.प्र.
दीक्षा गुरु	गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महाराज
आचार्य पद	31 मार्च 2007 औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	जैन आगम रुपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञाश्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदयग्राह्य है।
कृतियाँ	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 62 कृतियों की सृजना की गई है।
अलंकरण	''सारस्वत-श्रमण'', ''सारस्वत-कवि'', ''शास्त्र-कवि'', ''नय चक्रवर्ती'', ''संस्कृताचार्य'', ''विद्यावाचस्पति (डॉक्टर)''